ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 28 फरवरी 2016

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 28 फरवरी 2016 से 05 मार्च 2016

फा.कृ –05● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 61, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 193 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

नई दिशा-नया संकल्प

ज्ञान-मार्ग के प्रणेता थे दयानन्द सरस्वती – नरेन्द्र मोदी

ऋषि दयानन्द के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में 'नई दिशा–नया संकल्प' के नाम से आयोजित एक राष्ट्रीय समारोह में बोलते हुए देश के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती को ज्ञान–मार्ग के प्रणेता कहते हुए उनके जन्मोत्सव पर हार्दिक श्रद्धांजलि दी। उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के क्रांतिकारी स्वभाव और व्यवस्था में रहते हुए उसकी चुनौतियों का बलपूर्वक सामना करने को श्रद्धांजलि देते हुए आर्य समाज की परम्परा, इसके वर्तमान स्वरूप और भावी संभावनाओं को लेकर एक अत्यंत भावूपूर्ण उद्बोधन दिया। श्री मोदी ने ऋषि जन्मोत्सव पर आर्य समाज की दो धाराओं के एक होने के संकल्प पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और इसे राष्ट्र के हित में एक महत्त्वपूर्ण निर्णय की संज्ञा दी।

डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के संयुक्त तत्त्वावधान में 14 फरवरी, 2016 को

जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम में मनाए गए इस उत्सव पर 60 हज़ार से अधिक की संख्या में पूरे भारतवर्ष से आए आर्य संन्यासियों, विद्वानों, आर्यसमाजियों, प्राचार्यों, अध्यापक–अध्यापिकाओं को सम्बोधित करते हुए श्री नरेन्द्र मोदी ने देश के करीब दो करोड़ परिवारों से रोज़ का नाता रखने वाले डी.ए.वी. के विशाल परिवार को उनकी उपलब्धियों के लिए हार्दिक बधाई देते हुए कहा कि डी.ए.वी. का अब नवीन संकल्प यह होना चाहिए कि उसका डंका हिन्दुस्तान में ही नहीं दुनियाभर में बजे और वह अपने इतिहास के अनुरूप भारत की गरिमा को विश्व में बढ़ाने में सक्रिय योगदान दे।

श्री मोदी ने कहा कि आर्य समाज के 150 वर्ष होने में अभी लगभग दस–ग्यारह वर्ष का समय शेष है। इस अवधि में डी.ए.वी., आर्य समाज और गुरुकुल परम्परा को एकत्र होकर एक ऐसा दस सूत्रीय कार्यक्रम बनाना चाहिए जिससे देश और समाज को विश्व–पटल पर एक विशेष दर्ज़ा हासिल

शेष पृष्ठ 12 पर ☞

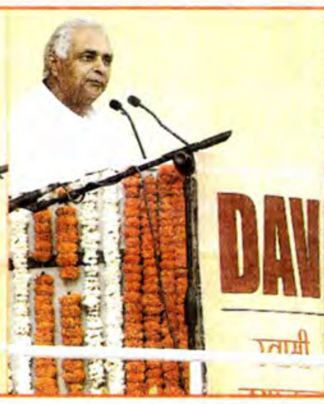

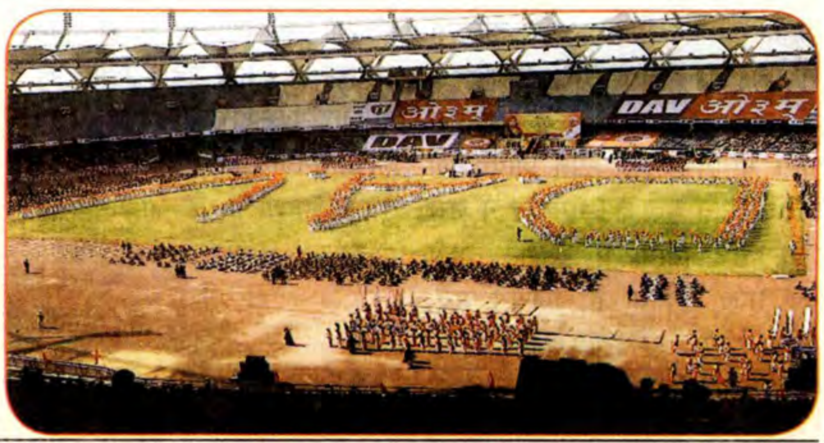

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 28 फरवरी, 2016 से 05 मार्च, 2016

हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

●डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो, महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति चिह्वयाऽदन्, रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋग् १०.४.४

ऋषिः **त्रितः आप्त्यः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अङ्ग)** हे, **(अमूर)** अमूढ़, **(चिकित्वः)** ज्ञानी, **(अग्ने)** परमेश्वर!, **(मूराः)** मूढ़, **(वयं)** हम, **(महित्वं)** महत्ता को, **(न)** नहीं [जान पाते]।, **(त्वं)** तू, **(वित्से)** जानता है। [हमारा], **(वव्रिः)** रूपवान् आत्मा, **(शये)** सोया पड़ा है, **(जिह्वया)** जिह्वा [आदि इन्द्रियों] से, **(अदन्)** भोग करता हुआ, **(चरति)** विचरता है, **(विश्पतिः सन्)** राजा होता हुआ [भी], **(युवतिं)** प्रकृति–रूप युवति को, **(रेरिह्यते)** अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है।

● हे अग्ने! हे तेजोमय ज्ञानी प्रभु! हम मूढ़ हैं, तुम अमूढ़ हो। हम तो यह भी नहीं जानते कि 'महत्ता' किसका नाम है, महत्त्व प्राप्त करना किसे कहते हैं। हम तो समझते हैं कि सांसारिक दृष्टि से महिमाशाली होना, हाथी, घोड़े, रथ, सेवक आदि का स्वामी हो जाना ही महत्ता है। हमारा तो विचार है कि नचिकेता को यम ने जिस सांसारिक धन–दौलत, पुत्र–पौत्र, भूमि के राज्य आदि सम्पत्ति के प्रलोभन में फँसाना चाहा था, उस सम्पत्ति को पा लेना ही महत्ता है। पर हम मूढ़ अज्ञानियों के ऊपर रहनेवाले अमूढ़ ज्ञानी तुम जानते हो कि सच्ची 'महत्ता' क्या है।

हमारा रूपवान् आत्मा सोया पड़ा है, उसे यही चेतना नहीं है कि मैं किसलिए इस शरीर में आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है मुझे किधर जाना है। वह जिह्वा आदि इन्द्रियों से निरन्तर भोगों को भोगने में आसक्त हुआ विचर रहा है और इस भोग भोगने में ही अपने जीवन की इतिश्री मान बैठा है। भगवान् ने उसे 'विश्पति' बनाया है, शरीर–नगरी का राजा बनााया हैं, जिसमें मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि अनेक प्रजाएँ निवास करती हैं। उसे इस शरीर–नगरी को ईश्वरीय साम्राज्य बनाना चाहिए था, अध्यात्म–साधना द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाना चाहिए था। शरीर–राष्ट्र को भोगों से जर्जर न कर सबल, सप्राण और समनस्क करना चाहिए था। पर धिक्कार है इस आत्मा को! यह तो एक 'युवति' को चाट रहा है, अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है। प्रकृति ही यह युवति है जो नटी बनकर आत्मा को अपने साथ नचा रही है, भोग भुगा रही है। आत्मा प्रकृति को चाट रहा है, प्रकृति आत्मा को चाट रही है। इस प्रकार आत्मा लौकिक भोग–विलासों में आनन्द ले रहा है।

हे मेरे आत्मन्! इस मूढ़ता को त्यागो, अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जगाओ, 'सच्ची महत्ता क्या है' इसे जानो, सोते से उठ खड़े हो, इन्द्रियों के वशीवर्ती न हो, अपितु इन्द्रियों के स्वामी बनो। प्रकृति को न चाटकर परम प्रभु के अमृत–रस का आस्वादन करो। तुम्हारा उद्धार होगा, तुम महिमाशाली बन जाओगे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु - भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी

पेट की शुद्धि के पश्चात् नाड़ी शुद्धि की बारी आती है और इसके लिए नाना प्रकार के प्राणायाम बताये गए हैं। भस्त्रा प्राणायाम से नाड़ियों के मल नाश होते हैं। नाड़ी शुद्धि के अतिरिक्त मन की शुद्धि भी आवश्यक है। मन अन्न से बनता है। वैसे तो सारा शरीर ही अन्न से बनता है। परन्तु शरीर अन्न के स्थूल भाग से बनता है और मन सूक्ष्म भाग से। जिस भावना अथवा जिस साधन से अन्न कमाया जाएगा, उसका सूक्ष्य प्रभाव मन पर अवश्य पड़ेगा। मन की शुद्धि का पूरा उपाय है इसको बुरे संकल्पों तथा विचारों से दूर रखा जाए।

जब मन्दिर के बाहर और भीतर की सफाई हो जाती है तब इस मन्दिर में बैठकर भगवान की अराधना का अधिकार भक्त को प्राप्त हो जाता है। तब वह प्रभु–भक्ति के महान द्वार में प्रवेश करता है तब वह उपासक बनता है, प्रभु के समीप बैठता है। प्रभु मन्दिर की नींव ब्रह्मचर्य है।

अब आगे....

"जो मनुष्य सत्य, प्रेम, भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन्हीं उपासकों को परम कृपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष–सुख देकर सदा के लिए आनन्दयुक्त कर देगा।"–दयानन्द।

'सत्यार्थप्रकाश' के सातवें समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं–"जो उपासना आरम्भ करना चाहे, उसके लिए यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो।"

यह तो हुई उपासना की तैयारी; परन्तु उपासना किस प्रकार करनी चाहिए–इसका वर्णन महर्षि इस प्रकार करते हैं–

"जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में, हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर, अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे। जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान–विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी–भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।"

यजुर्वेद के एकादश अध्याय के पाँचवें मन्त्र का भावार्थ लिखते हुए स्वामी दयानन्द जी ने यह बतलाया है कि –

"योगाभ्यास के ज्ञान को चाहनेवाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुशल विद्वानों का संग करें, उनके संग से योग की विधि को जानके ब्रह्म–ज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सबको सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग–विधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीव संग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता। अतः योग–विधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें।"

तात्पर्य यह है कि योग–विधि के बिना उपासना अथवा भक्ति नहीं हो सकती और न ही ब्रह्म–ज्ञान प्राप्त हो सकता है। योगविधि क्या है? यह योगदर्शन 1 में बताया गया है। यदि कोई भक्त यह समझे बैठा है कि यम–नियमों का पालन किये बिना और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान को प्रयोग में लाए बिना ही योग के आठ अंग बताए गए हैं–वह प्रभु–दर्शन कर लेगा, तो वह भूलता है। थोड़ा–बहुत जितना भी हो सके, इन साधनों की भट्टियों में से भक्त या उपासक को गुज़रना ही पड़ता है। महर्षि दयानन्द 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' में लिखते हैं –"यह उपासना–योग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कर्मों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े या सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।"

जब तक मनयम–नियमों की मंज़िलें तय नहीं करता, तब तक भक्ति का अधिकार ही प्राप्त नहीं होता। मन की वृत्ति इस प्रकार की हो जानी चाहिए कि उसमें हिंसा के भाव न आएँ, वह चोरी का चिन्तन भी न करने पाए, सत्य और ब्रह्मचर्य पर आरूढ़ रहे, लोभ में न फँसे और शौच, सन्तोष तथा तप से अपनी वृत्ति भक्तों की–सी बना ले। ऐसी वृति बनाने में ईश्वर पर पूर्ण भरोसा, उसी की इच्छा पर रहने का स्वभाव डालना और

वेद, उपनिषद्, गीता आदि का स्वाध्याय बहुत सहायक होते हैं।

इसके पश्चात् आसन की बारी आती है। कितने ही आसन तो केवल शरीर–रक्षा के लिए हैं और कुछ मन को एकाग्र करने के निमित्त। पद्मा–आसन और सिद्ध–आसन विशेष रूप से प्रयोग में आते हैं। परन्तु आप चाहे किसी भी आसन में बैठें, सुख से बैठें और वह आसन ऐसा हो जिसमें आप बिना थकान के कम–से–कम साढ़े तीन घण्टे बैठ सकें। कोई एक आसन ग्रहण कर लीजिये और उसी में शरीर को बिना हिलाये कम–से–कम साढ़े तीन घण्टे प्रतिदिन बैठने का अभ्यास कर लीजिये। मन को स्थिर करने से पूर्व शरीर को काबू करने की आवश्यकता है। जिसका शरीर ही वश में नहीं, उसका मन कदापि काबू में नहीं होगा। एक ही आसन में निरन्तर साढ़े तीन घण्टे निश्चल बैठने के अभ्यास के साथ प्राणायाम का भी अभ्यास करना चाहिए। महर्षि ने 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' के उपासना' विषय में लिखा है– "जैसे भोजन के पीछे किसी प्रकार से वमन हो जाता है, वैसे ही भीतर के वायु को बाहर निकाल के सुखपूर्वक जितना हो सके उतना बाहर ही रोक दें। पुनः धीरे–धीरे भीतर लेकर पुनरपि ऐसे ही करें। इसी प्रकार बारम्बार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है। इन तीनों के स्थिर होने के समय अपने आत्मा के बीच में जो आनन्दस्वरूप अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिए। जैसे मनुष्य जल में गोता मारकर ऊपर आता है, फिर गोता लगाया जाता है, इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में बारम्बार मग्न करना चाहिए।

शरीर आसन से स्थिर हो गया, प्राण प्राणायाम से स्थिर हो गया, तो फिर मन का स्थिर हो जाना स्वाभाविक हो जाता है क्योंकि प्राण के साथ ही मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्राणायाम–

प्राणायाम आरम्भ करने से पहले दोनों नासिकाओं को स्नान कराना आवश्यक है। नासिका–स्नान की विधि यह है कि हाथ पर या लोटे में जल लेकर नासिकाओं में श्वास द्वारा ऊपर खींचना चाहिए और फिर जल नीचे फेंक देना चाहिए। इस प्रकार पाँच–छः बार कर लेने से नासिकाएँ स्वच्छ हो जायेंगी और बलगम कम हो जायेगा। प्राणायाम भी तभी भली–भाँति हो सकेगा।

आसन में बैठकर कमर और गर्दन सीधी रखनी चाहिए। बहुत अधिक तनकर भी नहीं बैठना चाहिए। पहले बायें स्वर से श्वास ऊपर खींचकर दायें स्वर से छोड़ देना चाहिए। तब दायें से ऊपर खींचकर बायें से छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार सात–आठ बार करने के पश्चात् दोनों स्वरों से प्राण अन्दर ले–जाइये और नाभि तक अच्छी तरह भर लीजिये और आसानी के साथ जितना रोका जा सकता है रोकिये। तब एकाएक ऐसे, जैसे वमन किया जाता है, नासिकाओं द्वारा ही प्राण को बाहर फेंक दीजिये और पेट वायु से सर्वथा खाली कर दीजिये। पेट वायु से खाली करते समय नाभि को ऊपर की ओर खींचना चाहिए। प्राण बाहर फेंककर फिर इन्हें बाहर ही रोके रहिये। जब मन घबराने लगे तो धीरे–धीरे प्राण अन्दर भर लीजिये। प्राणायाम का सबसे सुगम तरीका यही है। इसी में बाह्य, आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तराक्षेपी प्राणायाम हो जाते हैं। यह प्राणायाम बिना किसी से सीखे भी किया जा सकता है। इससे आगे फिर किसी सच्चे वीतराग गुरु की शरण लेनी आश्वश्यक है।

प्राणायाम से जब प्राण स्थिर होने लगता है और प्राण के साथ मन भी चंचलता छोड़ने लगता है, तो इन्द्रियाँ स्वयं ही काबू में आ जाती हैं। इसी को प्रत्याहार कहते हैं।

अब धारणा और ध्यान की बारी आती है। धारणा के लिए हृदय में अथवा भ्रू–मध्य में मन को स्थिर कीजिये और इसका सुगम उपाय यह है कि हृदय अथवा भृकुटि में मन ही से ओम् के अर्थ की चिन्तना कीजिये, जिसमें न जिह्वा हिले, न कण्ठ, केवल मन ही से जाप हो।

जब यह अवस्था प्राप्त हो जाये तो समझिये कि ध्यान लगने लगा है। ऐसी अवस्था में एक ऐसा आनन्द प्राप्त होगा, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आपका मन यही चाहेगा कि घण्टों इसी अवस्था में बैठे रहें। जब आप दूसरे सांसारिक काम करेंगे, तब भी अन्दर से यही प्रेरणा होगी कि चलो अब प्रिय–दर्शन करें। तब आपकी आँखें सजल हो उठेंगी और आपके मुख से अकस्मात् निकल पड़ेगा–

जी चाहता है फिर फुरसत के रात–दिन,
बैठे रहे तसव्वुरे–जानाँ किये हुए।

इससे आगे की अवस्था का वर्णन कुछ असम्भव–सा है; उसे समाधि कहते हैं। भक्त–शिरोमणि योगिराज भगवान् दयानन्द ने इस अवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया है–"जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि–रूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिसके द्वारा ध्यान हो रहा है, जिसका ध्यान हो रहा है, वे तीनों विद्यमान रहते हैं; परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द–स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है; वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होके फिर बाहर को आ जाता है।"

इसी अवस्था को प्राप्त कर लेनेवाले के लिए तो ईशोपनिषद् में यह कहा गया है–

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

'जहाँ (पहुँचकर) सब भूत आत्मा ही हो गया, वहाँ एकता को देखते हुए विज्ञानी को क्या शोक है? और वहाँ पर शोक और मोह रह ही कैसे सकते हैं, जहाँ सर्वत्र आनन्द–ही–आनन्द का स्रोत बह रहा हो!' वहाँ तो सारे झंझट समाप्त हो जाते हैं, हर ओर आनन्द–ही–आनन्द दिखाई देता है। दुई जाती रहती है। अब एक ही आनन्दघन रह जाता है। अथर्ववेद के दूसरे काण्ड के पहले सूक्त का पहला ही मन्त्र है–

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः।।

'विद्वान् उस परमात्मा को गुहा (हृदय की गुफा) में देखता है, जहाँ विश्व एकरूप हो जाता है। यह पृथिवी भी व्यवहार के अयोग्य हो जाती है। तत्त्वज्ञानी बाकी जगत् को भी व्यवहार में आने के अयोग्य समझता है।' अर्थात् जिस समय भक्त प्रभु–चिन्तन में हृदयस्थ होकर मग्न हो जाता है, तब उसके लिए समस्त जगत् एकरूप प्रतीत होता है, और यह सब–कुछ व्यर्थ–सा प्रतीत होने लगता है। प्रभु–चिन्तन में वह इतना लवलीन हो जाता है कि इनकी ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। केवल आनन्दघन ही उसके सामने रह जाता है।

श्वेताश्वतर–उपनिषद् की तो यही पुकार उठी है–

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रु वं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

'जब वह युक्त होकर आत्म–तत्त्व के दीपक से उस ब्रह्मतत्त्व को देख लेता है, जो अजन्मा, अटल और सारे तत्त्वों से शुद्ध, निखरा हुआ है, तब वह उस देव को जानकर सारी फाँसों से छूट जाता है।'

लेकिन यह स्मरण रखिये कि जितनी शीघ्रता से ये बातें कह दी गई हैं, उतनी शीघ्रता से होती नहीं। इसमें बहुत लम्बा समय लग जाता है। इसलिए पूर्ण श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम से इन पर आचरण करना होगा। आलस्य को त्यागकर निम्न आचरण कीजिये–

1. रात को यदि तीन बजे उठ सकें तो अच्छा है, अन्यथा चार बजे अवश्य उठ जाइये और एक घण्टा ओम् अथवा गायत्री का जाप कीजिये। स्वामी जी के जीवन–चरित्र में लिखा है कि कलकत्ते में एक बार पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने स्वामी जी से पूछा–'ईश्वर से मिलने का क्या उपाय है?' स्वामी जी ने कहा–'बहुत दिन तक योग करने से ईश्वर की उपलब्धि होती है।'तब उन्होंने पूछा–'वह योग कैसा है?' उत्तर में स्वामी जी ने अष्टांग योग की व्याख्या करके सुनाई और उपदेश दिया कि 'तीन घड़ी रात रहे उठकर गायत्री का अर्थसहित ध्यान किया करो।' जो भी लोग स्वामी जी के साथ रहते थे, उन्हें वे सदा प्रातःकाल उठने का उपदेश देते थे।
2. पाँच बजे स्नान से निवृत्त होकर प्राणायाम कीजिये। पहले एक–एक नासिका से, फिर दोनों नासिकाओं से बाह्य, आभ्यन्तर और बाह्याभ्यन्तराक्षेपी प्राणायाम कीजिये। इसके पश्चात् भस्त्रा प्राणायाम करे और तब शान्त होकर भृकुटि अथवा हृदय में ध्यान लगायें। इसका विधि पहले लिखी जा चुकी है।
3. ध्यान के समय ओम् का जाप भी करते रहें।
4. तब सन्ध्या–हवनादि करें।
5. दोपहर को, या दिन में जब भी कोई समय मिले तो गायत्री–मन्त्र और ओम् का जाप कर लिया करें।
6. गायत्री मन्त्र तथा ओम् का मन्त्र इन दो ही के जपने का विधान वेद में है। महर्षि दयानन्द ने भी इनका ही आदेश दिया है।

यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 54 में गायत्री मन्त्र के उपांशु जाप से हर प्रकार के सुख की प्राप्ति का वर्णन है और यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय में परमात्मा ने ओम् जपने की आज्ञा दी है। अनुभव यह बतलाता है कि दोनों के एक–साथ जपने से लोक–परलोक दोनों सुधरते हैं और मन तथा बुद्धि की एकाग्रता प्राप्त होती है। गायत्री का जाप प्रातः पूर्व की ओर मुख करके करना चाहिए।

यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि।

यम–1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय (चोरी न करना), 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह (भोग–साधनों को इकट्ठा करने का लोभ न करना)।

नियम–1. शौच, 2. सन्तोष, 3. तप, 4. स्वाध्याय, 5. ईश्वरप्रणिधान (सब काम ईश्वरार्पण)

आसन– सिद्ध, पद्म, सुख–आसन आदि।

प्राणायाम–बाह्य, आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तराक्षेपी।

प्रत्याहार–इन्द्रियों को निर्विषय धारण करना।

धारणा–मन का मस्तकादि प्रदेश में ईश्वर के चिन्तन में बँध जाना।

ध्यान–धारणा का ईश्वर के आनन्द में लगातार बने रहना।

समाधि–ध्यान करनेवाले, ध्यान व भगवान् का एक हो जाना। भक्त, भक्ति और भगवान् का फिर कोई भेद नहीं रहता।

श्री महात्मा नारायण स्वामी का 'योग रहस्य' देखिये।

क्रमशः....

मीठे वचन ते सुख उपजे चहुं ओर

●भद्रसेन

प्रिय वचन सुन कर प्रसन्न होते हैं और यह एक अनोखी बात है कि बोलने में कुछ भी खर्च नहीं होता

प्रियवचन प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

तब मधुर वचन बोलने में कंजूसी क्यों? तभी तो कहा है–

तुलसी मीठे वचन ते,
सुख उपजे चहुं ओर।
वशीकरण इक मन्त्र है,
तज दे वचन कठोर।।।
ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आपु शीतल होय।।
कागा काको धन हरे कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाय के यश अपनो कर लेय।।
(तुलसी मीठे वचन से जग अपनो कर लेय।।)

मानव समाज के व्यवहार पर विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं, कि मानव समाज के पारस्परिक व्यवहार का मुख्य आधार बोल–चाल है। हम बोल कर ही परस्पर अपने भावों को प्रकट करते हैं। इस के बिना पारस्परिक भावसंप्रेषण का व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। भावों का आदान–प्रदान पारस्परिक व्यवहार का मूल आधार है और भाव संप्रेषण भाषा के माध्यम से ही होता है, क्योंकि शब्दों में पदार्थों, भावों को प्रकट करने की शक्ति छिपी हुई है। **शब्देष्वेवाश्रिता शक्ति विश्वस्यास्य निबन्धनी।** भर्तृहरिकृत वाक्यप्रदीप ब्रह्मकाण्ड–128

जीवन में शिक्षा का जो महत्त्व है, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। वस्तुतः विद्या ही वह कल्पलता, कल्पद्रुम, कामधेनु है, जिसके द्वारा हम हर अभीष्ट को साधने में समर्थ होते हैं तथा यह एक ऐसा रंग है, जिससे सब चित्र रूपवान होते हैं। ऐसी सर्वसाधिका शिक्षा की प्राप्ति का आधार भी अधिकतम भाषा, वाणी ही है।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः स्यात् शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।
भर्तृहरिकृत–वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्ड–123

बोल–चाल के बिना मानव व्यवहार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। तभी तो महाकवि दण्डी ने कहा है–यदि भावों के संप्रेषण का साधन शब्द व्यवहार न होता, तो यह भरा–पूरा संसार अन्धकारमय बन जाता।

रिश्तेदारों और मित्रों से सामाजिकता अपनापन अनुभव कर के हमें जो सुख मिलता है उसका एक मूलमन्त्र मधुर भाषण भी है, क्योंकि मधुर भाषी अपने 'मीठे वचन ते सब को आपू कर लेय'। इसीलिए वेद ने बारम्बार आपस में अपनत्व और विश्वास बढ़ाने के लिए सदा प्रिय, हितकर वचन बोलने का निर्देश किया है।

मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् अथर्व.3.30,2
वाचा वादमि मधुमत् अथर्व. 3.4,2–3
मधुमती वाचमुदेययम् अथर्व.16.2,1–2

यतो हि कटु अहितकर वचनों से अपने भी पराए हो जाते हैं। अपनत्व और विश्वास शत्रुता तथा सन्देह में बदल जाते हैं, तभी तो कड़वे बोलों को कोई भी पसन्द नहीं करता और न ही कोई अपने पास फटकने देता है।

न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ऋग1,41,9
शस्त्र का घाव तो समय के साथ भर जाता है,
इदमन्धन्तमः कृत्सनं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।
काव्यादर्श 1,4

पर वाणी का घाव महाभारत के रूप में बदल जाता है।

रोहते सायके विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं न सं रोहति वाक्क्षतम्।।
पंच–3,110, पृ. 55

अतः हमारे पारस्परिक सम्मान–अपमान का वाणी एक मुख्य आधार है, **ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः** अथर्व 19.9.3 तभी तो कहते हैं–'बातां हाथी पायां, बातां हाथी पांव'।

हमारी घरेलू और सामाजिक अशान्ति दुख तथा तू–तू, मैं–मैं का एक विशेष कारण वाणी का दुरुपयोग ही होता है जिस से प्रायः लड़ाई–झगड़े बढ़ते हैं। इतिहास के पृष्ठों के साथ प्रायः हर एक के जीवन में ऐसी घटनायें घटती रहती हैं। इसीलिए वेद ने सन्देश दिया है

सक्तु मिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मी निहिताधि वाचि।। ऋ.10.7.12

जैसे छाननी से छान कर सक्तु का सेवन सुखदायक होता है वैसे ही जो विवेकी जन मन रूपी छाननी से विचार कर हितकर मधु सदृश वाणी का प्रयोग करते हैं, उन का मित्रवर्ग स्थायी, वृद्धियुक्त होता है और उन की वाणी में कल्याणकारी वाणी का वास होता है, क्योंकि विचार विनिमय और भावप्रकाशन से होने वाले मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहारों का आधार या साधन वाणी ही है। वाणी, भाषा के बिना पारस्परिक व्यवहार सिद्धि की कल्पना एक अति परिश्रम साध्य स्थिति है। वह तो गूंगों की तरह की दुनिया ही होगी, जहां विवशता, असमर्थता, कष्ट, दुःख, अभाव तथा तड़पन के सिवाय और कुछ भी नहीं। पारस्परिक व्यवहार की सिद्धि में वाणी के महत्त्व को देखते हुए यह सरलता से कहा जा सकता है, कि जब हम शिष्टता के साथ सत्य–प्रिय और हितकारी वाणी का उचित उपयोग करते हैं

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।। 4,138

तब हमारा व्यवहार ठीक प्रकार से सम्पन्न होता है। परन्तु जब बिना विचारे या जानबूझ कर वाणी का अनुचित प्रयोग किया जाता है, तो उससे अनर्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं निकलता।

न्यायदर्शन 1,1,2 के वात्स्यायन भाष्य में शरीर, वाणी और मन की दुःप्रवृत्ति और शुभप्रवृत्ति का वर्णन करते हुए वाणी के प्रसंग में कहा है–कोई असत्य (व्यवहार), ईर्ष्या, माया, लोभ जैसे दोषों के प्रभाव से वाणी द्वारा झूठ, कठोर, चुगली और असम्बद्ध प्रलाप करता है। व्यक्ति जब धर्म से प्रभावित होता है, फिर वाणी द्वारा सत्य हितकर–प्रिय और सुविचारित बोल बोलता है।

न्यायदर्शन (1,1,2) के वात्स्यायन भाष्य में
वाचाऽनृतपरुषसूचनाऽसम्बद्धानि,
अथ शुभा–वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति।

इस विवेचन से स्वतः सिद्ध हो जाता है, कि हमारे सामाजिक जीवन को सुखी बनाने के लिए वाणी का सोच–विचार करके प्रयोग करना चाहिए। इससे तब व्यक्तिगत जीवन तथा मन तनावरहित, शान्त, सन्तुष्ट रहता है।

182, शालीमार नगर,
होशियारपुर–146001.

आर्य समाज के कर्मयोगी संत आचार्य बलदेव जी महाराज

●डॉ. रवींद्र कुमार शास्त्री 'सोम'

यह भारत भूमि प्राचीन काल से ही ऋषि–मुनियों, तपस्वियों, साधु, संतों, वीरों, वीराङ्गनाओं, पुण्यात्माओं, विद्वानों, दार्शनिकों, चिन्तकों, परोपकारियों, समाज सुधारकों, ज्ञानियों, सदाचारियों राष्ट्र–भक्तों, धार्मिकों, गौ–भक्तों एवं ईश–भक्तों की भूमि रही है। समय समय पर भारत की पुनीत वसुन्धरा पर अनेक महापुरुष जन्म लेकर अपने सदुपदेशों के द्वारा भटके हुये लोगों को एक नूतन जीवन देते रहे। चाहे वह स्वामी दयानन्द हो, चाहे वह स्वामी श्रद्धानन्द हो, चाहे स्वामी स्वतंत्रानन्द हो, चाहे स्वामी सर्वानन्द हो, चाहे स्वामी ओ३मानन्द हो चाहे स्वामी विवेकानन्द हो चाहे स्वामी त्यागानन्द हो, चाहे स्वामी सर्वदानंद एवं दर्शनानन्द हो। इसी प्रकार अनेक धर्मवीरों, राष्ट्र–भक्तों एवं वीराङ्गनाओं ने भी अपनी जान की परवाह न कर धर्म एवं राष्ट्र की रक्षार्थ अपने को बलिदान कर दिया। जैसे–पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त, लाला लाजपत राय, नेता सुभाषचन्द्र बोस, वीर भगत सिंह, राम प्रसाद बिस्मिल्ल राजेन्द्र लहरी, सखदेव, खुदीराम बोस, चन्द्रशेखर आजाद आदि अनेक वीरों ने भी धर्म एवं राष्ट्र की रक्षार्थ अपने को कुर्बान कर दिया। इसी श्रृंखला में शिरोमणि संत आचार्य बलदेव जी का नाम अग्रणी है। आज कौन नहीं जानता है कि आचार्य बलदेव जी का शिष्य स्वामी रामदेव सम्पूर्ण विश्व में वैदिक रूपी पताका फहरा रहे हैं। यदि स्वामी दयानन्द को प्रज्ञाचक्षु ब्रह्म ऋषि स्वामी विराजानन्द दण्डी न मिले होते तो आज आर्य समाज को कौन जानता? यदि स्वामी रामदेव को आचार्य बलदेव जी न मिले होते तो आज स्वामी रामदेव को कौन जानता? जिस प्रकार स्वामी विरजानन्द ने अपने शिष्य स्वामी दयानन्द को वैदिक शिक्षा देकर उन्हें एक महान् सुधारक एवं वेदों का अद्वितीय विद्वान् बनाया उसी प्रकार आचार्य वलदेव जी ने भी स्वामी विरजानन्द बनकर स्वामी रामदेव को विद्वान् एवं योगगुरु बनाया। यदि हम आचार्य बलदेव जी को द्वितीय स्वामी विरजानन्द मानें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वास्तव में यह सत्य है कि आचार्य बलदेव जी द्वितीय विरजानन्द थे जिन्होंने अपने वैदिक धर्म की रक्षा एवं वेदों की रक्षार्थ स्वामी रामदेव जैसे अनेक शिष्यों को तैयार कर समाज को समर्पित किया।

आचार्य बलदेव जी का जन्म 25 अक्टूबर सन 1932 ई. को हरियाणा प्रान्त के सोनीपत जिले के सरगथल नामक गांव में गूगन सिंह के घर हुआ। बचपन से ही उनका जीवन सादगी एवं उच्च विचारों से परिपूर्ण था। उन्होंने जाट कॉलेज रोहतक से एफ.एस.सी. तक की शिक्षा प्राप्त की। तदुपरान्त स्वामी ओ३मानन्द जी सरस्वती के सानिध्य में रहकर सन् 1962–1971 तक गुरुकुल झज्जर में रहते हुये अष्टाध्यायी, प्राचीन व्याकरण, महाभाष्य, दर्शनों एवं वेदों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करते हुये अपने को एक अच्छा विद्वान् बनाने में समर्थ हुये तथा बाद में 1971 से 2000 तक गुरुकुल कालवा में रहकर श्रद्धापूर्वक कार्य एवं अध्यापन कार्य करते हुये अनेक ब्रह्मचारियों को वेदों एवं व्याकरण का विद्वान् बनाया। जैसे–आचार्य ऋषिपाल, आचार्य स्वदेश, आचार्य महीपाल, आचार्य अर्जुनदेव आदि।

आचार्य बलदेव जी आर्य प्रतिनिधि सभा रोहतक के कई बार प्रधान पद पर रहे और कुछ दिनों तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के प्रधान पद को

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–क्या गंगा आदि नदियों में मृत व्यक्ति की अस्थियाँ विसर्जन करने जाना उचित नहीं है? यदि नहीं, तो फिर उन अस्थियाँ का क्या करें?

समाधान–यह उचित नहीं है। किसी शास्त्र में नहीं लिखा, कि हरिद्वार में जाओ, गंगा जी में उन अस्थियों को डालो, या नर्मदा जी में डालो, या और किसी नदी में डालो। ऐसा कोई विधान नहीं है। बल्कि उससे नुकसान होता है। जल अशुद्ध होता है। लोग वहाँ पर स्नान करते हैं, उनके पाँव में हड्डी टकराती है, तो कितना खराब लगता है। उसका नाम हर की पेड़ी नहीं है, उसका नाम हाड़पेड़ी है। वहाँ पर हड्डियाँ ही हड्डियाँ, इतनी हड्डियाँ डाल दी गईं, कि लोगों को स्नान करना कठिन हो गया। तो वहाँ नहीं डालना चाहिये, ऐसा कोई विधान नहीं है। तो फिर क्या करें? स्वामी दयानंद जी ने संस्कार–विधि में लिखा है, मृतक का अंतिम संस्कार करने के बाद उसकी अस्थियाँ चयन करके =(इकट्ठी करके) कहीं कोने में गड्ढा खोदकर के उसमें गाड़ देनी चाहिये। बस, और इसके बाद कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

शंका–क्या जन्म–दिवस (बर्थ डे) मनाना चाहिये?

समाधान–जी हाँ, बिल्कुल मनाना चाहिये। कैसे मनाना चाहिये? केक काटना, मोमबत्ती जलाना, फूँक मारकर बुझाना, और हैप्पी बर्थडे टू यू, ऐसा नहीं। ऐसे नहीं मनाना चाहिये। ये तो वेस्टर्न कल्चर है, पश्चिमी सभ्यता है। **भारतीय सभ्यता से जन्म दिन मनाना चाहिये।** अपने घर में हवन करो। सब मित्र, संबंधी, रिश्तेदारों को बुलाओ, आज मेरा जन्मदिन है। बुलाओ और सबके सामने संकल्प लो, और सोचो, मेरा जन्म क्यों हुआ था? मैं किस काम के लिये दुनिया में आया हूँ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या मैं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा हूँ? बढ़ रहा हूँ तो ठीक है। थोड़ी और गति बढ़ाओ। और यदि नहीं बढ़ रहा हूँ, तो संकल्प लो, अब मैं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ूँगा। मेरा लक्ष्य क्या है–मोक्ष। ईश्वर प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति, जन्म–मरण से छूटना, यह सबके जीवन का लक्ष्य है। जिसको भी जन्म दिन मनाना हो, इस तरीके से मनाये। ऐसा संकल्प करें, कि आज मैं इस गुण को धारण करता हुँ और कम से कम एक दोष को छोड़ें। गुस्सा करना, झूठ बोलना, छल–कपट करना, हेरा–फेरी करना, जो भी हो, कोई भी एक दोष छोड़ें। **एक जन्मदिन पर एक दोष छोड़ें और एक गुण को धारण करें।** अगर आपने बीस साल जन्म दिन मनाया, तो देखिये बीस साल में कितनी अच्छी उन्नति हो जायेगी। बीस गुण आ जायेंगे, बीस दोष चले जायेंगे। यज्ञ करें, सब लोगों को इकट्ठा करें। और सबको अच्छी–अच्छी मिठाई खिलायें, आप भी खायें। इस तरह से जन्मदिन मनाना चाहिये।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

पृष्ठ 04 का शेष

आर्य समाज के कर्मयोगी ...

भी सुशोभित किया।

आचार्य बलदेव जी आर्य जगत के मूर्धन्य संन्यासियों में अद्वितीय थे। आचार्य जी ने वेदों, व्याकरण, महाभाष्य का अध्ययन करने के पश्चात् अपना सम्पूर्ण जीवन वेदों की रक्षार्थ आर्य समाज के प्रचार प्रसार में लगा दिया। आर्य समाज के प्रचार प्रसार के लिए उन्हें कभी भूखे भी रहना पड़ता था तो वह रह जाते थे। वह हमेशा कहा करते थे कि जिस स्वामी दयानन्द ने अपना घर परिवार एवं गांव छोड़कर वेदों की रक्षा के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया ऐसे महान् संन्यासी के द्वारा स्थापित आर्य समाज की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। यदि हम लोग ऐसा नहीं करते हैं तो हम धर्म विरोधी हैं।

स्वामी दयानन्द की तरह आचार्य बलदेव जी ने भी अपना सम्पूर्ण परिवार घर जमीन आदि सभी को त्यागकर अपने जीवन को आर्य समाज की रक्षा में लगा दिया और सभी आर्य जनों से कहा कि आर्य समाज हमारी माँ है। इसकी रक्षा करना हमारा परम दयित्व है।

आचार्य बलदेव जी गौ भक्त थे। उन्होंने गौओं की रक्षा पर विशेष बल दिया। उनकी रक्षा के लिये आचार्य ने गौ रक्षा आंदोलन भी चलाया और उनके समक्ष सरकार को झुकना पड़ा। वह सबसे कहा करते थे कि जो मनुष्य गौओं की रक्षा नहीं करता है उसे संसार में रहने का कोई अधिकार नहीं।

गौ माता हमारी संस्कृति की पहचान है। शास्त्रों में वर्णित है कि जो व्यक्ति गौओं की रक्षा नहीं करते है और अपने स्वार्थ सिद्धि करने के लिये गौओं की हत्या कर उनके मांस से अपनी भूख मिटाते हैं ऐसे व्यक्तियों को शीशे की गोलियों से उड़ा देना चाहिये अर्थात् मार देना चाहिये जैसा कि वेदों में वर्णित है।

आचार्य जी का सम्पूर्ण जीवन वेदानुकूल था। वह प्रातः चार बजे उठकर पहले ईश का ध्यान करते थे। तदुपरान्त दैनिक दिन–चर्या से निवत्त होने के पश्चात् स्नानादि कर संध्या यज्ञ हवन आदि करते थे। तत्पश्चात् वेदों का स्वाध्याय करना उनका नित्य का कार्य था। वह सुबह शाम कम से कम दो घंटे अवश्य ही घूमते थे अर्थात् भ्रमण करते थे।

वह आर्य समाज के महान् व्यक्तित्व थे। उन्होंने आर्य समाज के सिद्धान्तों एवं ऋषिवर दयानन्द के सपनों को साकार करने के लिये कई जगहों पर आर्य समाज, गुरुकुल तथा गौशालाओं की स्थापना की। कई बार गौशालाओं के प्रधान पद एवं संरक्षक पद पर भी रहे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के प्रचार प्रसार में लगा दिया। वह आर्य समाज के स्तम्भ थे। उनका सम्पूर्ण जीवन त्याग एवं पवित्रता से परिपूर्ण था। उन्होंने अपने जीवन में हिम्मत कभी भी नहीं हारी। वह हमेशा सबसे कहा करते थे कि जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है वह वेदों के सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारकर उन पर चलने का प्रयास करे। वह जिस भी कार्य को करते थे बड़ी सूझ बूझ के साथ करते थे। वह जहाँ जाते थे वहाँ कहा करते थे कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। जो मनुष्य वेदों के पथ पर चलता है उसका कल्याण हो जाता है। जो मनुष्य वेद विरुद्ध आचरण करता है वह मनुष्य नहीं बल्कि पशु माना जाता है। नीतिकार ने लिखा है–

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो नधर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूताः मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।

अर्थात् जिस मनुष्य में न विद्या है, न तप है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण और न धर्म है ऐसे मनुष्य इस मृत लोक पर भाररूप में हिरण के समान केवल विचरण कर रहे हैं। ये सभी गुण जिनमें होते हैं वही मनुष्य होते हैं। शास्त्रों का कथन है–मर्नुभवः अर्थात् हम मनुष्य बनें। लेकिन हम मनुष्य न बनकर पशु बन रहे हैं। हम पशुओं की तरह भोगों में फंसकर अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं जबकि ऐसा नहीं करना चाहिये।

आचार्य जी का कहना था कि हम लोग ऋषि मुनियों के बताये हुये पद चिह्नों पर चलें। तभी हमारा कल्याण संभव है। वेदों के पथ पर चलते हुये प्रतिदिन सुबह शाम कम से कम दो तीन घंटे ईश चिन्तन करता है। वह मनुष्य नहीं देवता माना जाता है। इन गुणों से युक्त आचार्य बलदेव जी थे। इसलिये वह मनुष्य नहीं देवता थे।

आचार्य बलदेव जी असाधारण प्रतिभा के व्यक्तित्व थे। उनका सम्पूर्ण जीवन त्यागमय था। आर्य समाज उनके लिये प्राण था। आर्य समाज के प्रचार प्रसार में उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। ऐसे महान् व्यक्तित्व संसार में कभी कभी आते हैं। वह वेदों, प्राचीन व्याकरण, महाभाष्य, दर्शनों, निरुक्त आदि अनेक शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे। वह निर्भीकता के पुजारी थे। उन्होंने गौ रक्षा आंदोलन में सरकार को भी झुका दिया। ऐसे महान् विभूति को हम कभी नहीं भूल सकते।

वह बहुत निर्भीक थे। वह सत्य के लिए हमेशा अडिग रहते थे। सत्य की रक्षा के लिए हमेशा मर मिटने को तैयार रहते थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध आवाज उठाने वालों सतलोक आश्रम रोहतक के कबीर पंथी महाराज रामपाल को धूल चटा दी। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य जी बहुत निर्भीक थे। वास्तव में जो लोग आचार्य जी के मार्ग को अपनायेंगे उनका जीवन महान बन जायेगा।

उन्होंने अपने जीवन में कभी भी किसी का अहित नहीं चाहा। सबकी भलाई की, सबका उपकार किया और रुपयों पैसों एवं अन्नों से गरीबों को मदद भी किया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन देश–सेवा, आर्य समाज की सेवा, धर्म सेवा एवं परोपकार में लगा दिया। उन्होंने गौरक्षा आंदोलन, संस्कृत एवं संस्कृति बचाओ आंदोलन भी किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बाल विवाह, छुआछुत, जाति प्रथा एवं स्त्रीशिक्षा पर विशेष बल दिया। बाल विवाह, छुआछूत एवं जाति प्रथा को उन्होंने वेद–विरुद्ध बताया। आचार्य जी ने कहा कि स्त्रियों को भी वेद शास्त्र पढ़ने का अधिकार है, जैसा कि शास्त्रों में गार्गी जैसी विदुषी का प्रमाण भी मिलता है। आचार्य जी एक धर्मोद्धारक परोपकारी, न्यायप्रिय, सत्यवादी, स्वामी दयानन्द के अनन्य भक्त समाज सेवी, राष्ट्र–भक्त, धर्म–भक्त एवं कर्मयोगी संत थे। ऐसे महामानव को मेरा शत शत प्रणाम है। लेखक कविता के माध्यम से प्रस्तुत करता है–

जब तक सूरज चांद रहेगा।
बलदेव जी का नाम रहेगा।।
उनकों कभी नहीं भूलेंगे।
सारा जग उन्हें याद करेगा।।
वेदों के पथपर चलना।
उनका नित्य काम था।
बलदेव जी का दुनियाँ में,
बहुत बड़ा नाम था।।
ज्ञान की गंगा दिल में बहाई।

शेष पृष्ठ 06 पर

सब को अनिवार्य शिक्षा ही वेदादेश

● डॉ. अशोक आर्य

भारत प्राचीन काल से ही उत्तम शिक्षा का केंद्र रहा है। विश्व का विद्यार्थी वर्ग। यहाँ शिक्षा प्राप्ति के लिए आता था शिक्षा के इस उच्च स्तर तथा विदेशियों की मांग के कारण इस देश को। गुरुविश्वका स्थान प्राप्त था इस सब का कारण इस देश के लोगों का वेदानुगामी होना। इस देश में प्राचीन काल तो। था और वेद में शिक्षा को अनिवार्य रखने का ओदश दिया है यह शिक्षा राजकीय व्यवस्था के। शुल्क शिक्षा रही है क्या मुगल काल के आरम्भ तक नि। रही आधीन कभी भी नहींयह राज्य के कार्य क्षेत्र से सदा व स्वाधीन रही है इस का। कारण यह रहा कि शिक्ष की व्यवस्था का कार्य वानप्रस्थी व सन्यासी लोगों के हाथ में रहा समाज के कल्याण के लिए घरों से निकलते तथा दूरस्थ, यह लोग परिजनों का त्याग कर नदी के क्षेत्रों में जा कर कहीं किनारे पर्वतों की तलहटी में वीरान व जंगलों में जा कर, इन का तथा इन के शिष्यों का भरण पौषण भिक्षा पर ही। गुरुकुलों की स्थापना करते थे इस कारण शिक्षा पर उन दिनों कुछ भी व्यय नहीं करना होता था तथा यह लोग होता था। ते थे अपने शिष्यों का जिस लगन से शिक्षा दे आज कल की सरकारी शिक्षा पद्धति अत्यधिक धन व्यय के बाद भी वैसी शिक्षा दे पाने में सक्षम नही है आज का विद्यार्थी। इस का कारण सरकारी हस्तक्षेप की अधिकता ही है। शिक्षा में निरंतर पिछड़ता जा रहा है स सम्बनइ, वेद ने शिक्षा का जो सब के लिए समान अधिकार दिया है यदि में ऋग्वेद का मन्त्र 6 बड़ा सुन्दर उपदेश 1414 और सामवेद का मन्त्र 77.33 तथा यजुर्वेद का मन्त्र 1.52. करते हैं

उप न।। :सुमृडीका भवन्तु न। श्रृणवन्त्वमृतस्य ये :सूनवो गिर (ऋ 6.1.52. यजु 33।। 1515 समा 77)

हम बता चुके हैं कि वेद ने राजा को प्रजा दवारा सीधे चुनने का आदेश दिया है तथा वह स्वेच्छाचारी न हो कर कुछ सभा समितियों के आधीन कार्य कर ऐसा आदेश भी भारतीय स्वाधीनता। इस प्रकार वेद ने प्रजातांत्रिक पद्धति को ही उत्तम कहा है। दिय है के पश्चात् बनाए गए संविधान में प्रजातांत्रिक पद्धति को तो अपनाया है किन्तु 17 वर्ष की आयु पूर्ण करने वाले प्रत्येक प्रौढ़ को मताधिकार दे तो दिया किन्तु इसमें उसकी योग्यता का उल्लेख नहीं किया गया। इस कारण प्रत्येक अशिक्षित प्रौढ़ को भी मताधिकार मिल गया। ग यह अशिक्षित लोकजनीतिक परिस्थितियों तथा प्रतिनिधि चुनने के लिए आवश्यक योग्यता को सही से नहीं समझ पाते और मताधिकार का दुरुपयोग कर देश की हानि का कारण बनते है इसलिए इस। हमारा देश आज भी शिक्षा के वैदिक आदर्श से बहुत दूर है। देश की शिक्षा की पुनर्स्थापना आवश्य है

इस सम्बन्ध में मन्त्र कह रहा है कि:–

हमारे बालक नाश रहित अमृत तुल्य तथा विद्या से युक्त वाणियों को जब सुनेंगे तो उतम व सुखदायी वातावरण बनेगा इस का भावार्थ करते हुए अनिवार्य शिक्षा के। सम्बन्ध में ऋषि दयानंद सरस्वती इस प्रकार कहते हैं

माता पिता तथा अन्य पालक जनों को राजनीति और कुल में यह दृढ नियम बनाना चाहिए कि हमारी जो भी संतान हो वह ब्रह्मचर्य दवारा विद्या के ग्रहण के लिए, जो इसका उल्लन्घन करे उसे राजा और कुलीन पुरुष बहुत। ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करे। दंड दें

इस सब से यह तथ्य सामने आता है कि अच्छी शिक्षा वह बालक ही प्राप्त कर सकता है अपने ध्यान को। जिस का ध्यान केवल और केवल शिक्षा में ही केन्द्रित हो, एकाग्र व् मात्र शिक्षा में ही केन्द्रित करने के लिए आश्वयक है कि ब्रह्मचर्य का व्रत धारण ब् बिना। किया जावेरह्मर्च के उत्तम शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती ब्रह्मचार्य से ही। जब विद्यार्थी रोग रहित करते हुए शक्ति का पुंज होगा। शरीर की शक्ति को दे पावेगा हुए भी विषयों में हीफंसा रहेगा वह शिक्षा में तो ध्यान दे ही नहीं पावेगा तो फिर वह,? शिक्षा कैसे प्राप्त करेगा

इसलिए स्वामी जी कहते हैं कि शिक्षा के आरम्भ में ही बालक को ब्रह्मचर्य का व्रत दिया जावे और जो विद्यार्थी इस व्रत का खंडन करे उल्लंघन करे उसे दंड दिया जावे। जब ऐसा होगा तो विद्यार्थी के लिए उतम शिक्षा के दरवाजे खुल जावेंगे।

इस सम्बन्ध में मनुस्मृति के अध्याय सात के श्लोक संख्या 152 में भी सुन्दर प्रकाश डालते हुए कहा है कि:–

कल्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां रक्षणम,।

इस के आलोक में स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 3 में इस प्रकार लिखते हैं कि यह है कि इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिए कि उसका अभिप्राय" अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लडके और लड़कियों को घर पांचवेंमें न रख सके। जो न भेजे वह दंडनीय हो, पाठशाला में अवश्य भेज देवे।

प्राचीन भारत में सौ प्रतिशत शिक्षा थी इस कारण वेद के सब आदेश का। इस पर, हमें मिलता है इस सम्बन्ध में एक प्रमाण रामायण से। विधिवत पालन होता था बालमिकी । हमें अत्यधिक गर्व हैमायण के काण्ड 1 के श्लोक आठ में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है:–

कामी वा न कदर्यो वा। क्वचितः पुरुषः नृशंस, दृष्टुं शक्यमयोध्यायाँ नाविद्वान, न च नास्तिक।।

स्पष्ट है कि अयोध्या में एक भी व्यक्ति ऐसा न था जो कामी दुष्ट, कृपण, अविद्वान, क्रूर, भ्रष्ट आचारी, और नास्तिक हो अर्थात् राम राज्य में इस प्रकार का। आज तो विश्व में यह प्रथा है कि जो अपने हस्ताक्षर कर सके उसे। दोष किसी में भी न था पठित माना जाता है किन्तु राम राज्य में तो एक भी ऐसा न थाजो अपठित तो क्या अद्वितीय विद्वान न हो। अर्थात् सब लोग विद्वान् थे।

कभी विश्व गुरु कहलाने वाला भारत आज शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पीछे चला गया है शिक्षा के प्राचीन आदर्श को पाने के लिए। इस का कारण सदियों की पराधीनता है। न जाने कितने वर्ष अभी प्रतीक्षा करनी होगी इतना ही नहीं ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा का तो। प्रतिदिन आचार्य आज की शिक्षा में ब्रह्मचर्य न होने से प्रश्न? प्रचार होगा न जाने कब तक पुन तथा शिक्षिका के संबंधों तथा सहपाठियों के अनाचार पूर्वक संबंधों के कारण शिक्षा का निरंतर हास हो रहा है आज आवश्यकता है कि हमारा सब समाज तथा राष्ट्र हितैषी और शासनाधिकारियों को ब्रम्हचर्य से युक्त शिक्षा की व्यवस्था की और ध्यान दें।

हमारी जातीय व्यवस्था में प्राचीन काल में ब्राहमण को उच्च स्थान दिया गया था अरत्यधिक सम्मान के कारण शिक्षा का यह ब्राहमण के सामने राजा तक भी नत होते थे। वह शिक्षा दान के अपने कर्तव्यों। केंद्र प्रसन्नता से अपने शिष्यों को उतम शिक्षा देता था को निस्वार्थ भाव से करता था इस कारण विद्यार्थी को किसी प्रकार की शिकायत न होती थी बिना भय के सब प्रकार के संदेहों का गुरु जन समाधान करते थे परिणाम स्वरूप। श्री होने से कोई विद्वान् ही हो कर गुरुकुल को छोडते थे किन्तु आज के शिक्षक का राज्य मंत्री तो क्या साधारण से राज नेता भी उससे अपना नौकर समझते हैं। सम्मान नहीं रहा इस कारण वह उसे अपने नीचे ही रखने का यत्न करते हैं इस प्रकार अपमानित व दबा। कुछ भी नहीं परिणाम स्वरूप विद्यार्थी की? हुआ अध्यापक क्या शिक्षा दे सकता है इसलिए आवश्यकता है आज के वह पिछड़ रहा है। अवस्था भी निंरतर गिर रही है अध्यापक को सम्मान देने की और शिक्षा को ब्रह्मचार्य व्रत के अंतर्गत लाने की यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही देश आग बढेगा।

104 शिप्रा अपार्टमेन्ट,
कौशाम्बी 201010 गाजियाबाद

☞ *पृष्ठ 05 का शेष*

आर्य समाज के कर्मयोगी ...

वेदों की ज्योति जग में जलाई।।
श्री बलदेव जी ज्ञानी परोपकारी थे।
ब्रह्मचारी और सदाचारी थे।।
स्वामी दयानन्द के सच्चे भक्त थे।
गौ–भक्त, राष्ट्रीवादी और ईश–भक्त थे।।
व्याकरण के सूर्य और विद्वान् थे।
समाज सुधारक और इन्सान थे।।
आचार्य बलदेव जी को मेरा प्रणाम है।
आज उनका भुवन में बड़ा नाम है।।
उन्होंने वेदों के पथपर चलना सिखाया।
संध्या और हवन करना बताया।।

आचार्य बलदेव जी एक कर्मयोगी संत थे। कर्म करना ही मनुष्य का असली जीवन है। जो मनुष्य कर्म करने से डरता है वह मनुष्य अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकता।

वेदमंत्र स्पष्ट करता है–

कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजी:विशेषतं समा.
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यह मंत्र स्पष्ट करता है कि मनुष्य को शुभकर्म करता हुआ सौ वर्षों तक जीने की इच्छा रखनी चाहिये। जो मनुष्य अपने जीवन में शुभ कर्म करता है उसका परिणाम सदा शुभ ही होता है। कर्म करने वाला मनुष्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। जो मनुष्य केवल भाग्य भरोसे रहता है और कर्म करना नहीं चाहता है वह अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्य का जीवन हमेशा क्रन्दन करता रहता है। मनुष्य–जीवन में कर्म ही सब कुछ है। कर्म करने वाला व्यक्ति ही आगे बढ़ता है। आचार्य बलदेव जी का भी यही कथन था कि हे मनुष्य! तुम केवल कर्म करो और फल की चिन्ता मत करो। जो मनुष्य जैसा कर्म करता है परमात्मा उसे वैसा ही फल देता है।

दिनांक 28 जनवरी 2016 ई. को दयानन्द मठ रोहतक में लगभग 6 बजे सुबह अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई। उनके निधन का समाचार सुनते ही सम्पूर्ण आर्य जगत स्तब्ध रह गया। आचार्य बलदेव जी के जाने से आर्य जगत को जो झटका लगा अर्थात् आर्य जगत को जो क्षति हुई उसकी पूर्ति होना असंभव है। आचार्य जी ने आर्य समाज के हितार्थ जो कार्य किया उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। ऐसे महान् आत्मा को मेरा शत शत नमन है।

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय
इन्द्रप्रस्थ (आर्यनगर)
फरीदाबाद (हरियाणा)

महर्षि कपिल

भारतीय दर्शन के इतिहास एवं विकास में जिन तत्वज्ञ विचारकों को विभिन्न विचारणाओं तथा परम्पराओं के प्रवर्तकों के रूप में स्वीकार किया जाता है और आचार्य पद से अलंकृत किया जाता है, उनमें महर्षि कपिल का स्थान अत्यन्त उच्च है। उन्हें सांख्य–योग दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। बाद में महर्षि पतञ्जलि के पृथक् योग दर्शन की रचना की। महाभारत, गीता, भागवत पुराण आदि में कपिल के दार्शनिक सिद्धान्तों को सांख्य–योग नाम से ही पुकारा गया है।

जीवन–सम्बन्धी कथाएं

सांख्य–दर्शन के आदि प्रवक्ता महर्षि कपिल का नाम इतिहास का विषय नहीं है। डॉक्टर कीथ के कथनानुसार वे केवल काल्पनिक अथवा पौराणिक व्यक्ति (Legendary person) हैं जिनका उल्लेख महाभारत, भागवत पुराण, भगवद्गीता तथा अन्य पुस्तकों में मिलता है। सौन्दरानन्द में महाकवि अश्वघोष ने संकेत किया है कि भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि 'कपिलवस्तु' महर्षि कपिल के ही आश्रम–स्थान पर बसाई गई थी।

रामायण में महर्षि कपिल का नाम सूर्यवंशी राजा सगर के बेटों के साथ जोड़ा गया है। वहां लिखा है कि राजा सगर ने सौवां अश्वमेध यज्ञ करने के लिए घोड़ा छोड़ा। घोड़े की रक्षा के लिए उसके बेटे, जिनकी संख्या बहुत अधिक लिखी गई है, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर साथ चले। इन्द्र ने उस घोड़े को चुपके से चुरा लिया और कपिल मुनि के आश्रम में बांध दिया। महर्षि तपोमग्न थे, उन्हें इस बात का कुछ पता न चला। सगर के बेटे घोड़े को ढूंढ़ते हुए कपिल के आश्रम में पहुंचे और घोड़े को वहां बंधा हुआ पाकर बड़े कुपित हुए। वे ऋषि का अपमान करने लगे और उन्हें बुरा–भला कहते हुए मारने–पीटने लगे। ऋषि की समाधि भंग हो गई। उन्होंने कुपित होकर सगर के बेटों को शाप दे दिया और उन्हें भस्म कर दिया।

महाभारत में बताया गया है कि महर्षि कपिल के प्रधान शिष्य आसुरि मुनि थे जो महर्षि कपिल के समान ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके दिव्य दृष्टि को प्राप्त कर चुके थे। एक बार उनके पास कपिलमतावलम्बी बहुत से मुनि आए और पुरुष और प्रकृति सम्बन्धी प्रश्न पूछने लगे। उन आगन्तुकों में कपिला नामक ब्राह्मणी के पुत्र कापिलेय पंचशिख भी थे। पंचशिख ने उनकी शिष्यता ग्रहण की और समय पाकर सांख्य सिद्धान्तों के प्रबल व्याख्याता बन गए। इन्हीं पंचशिख मुनि ने मिथिला के जनकवंशी राजा जनकदेव को सांख्य तत्त्व का उपदेश दिया था। डॉक्टर कीथ और जैकोबी ने आसुरि मुनि तथा कापिलेय पंचशिख को भी पौराणिक एवं काल्पनिक व्यक्ति माना है।

सांख्य–दर्शन की परम्परा

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, सांख्य–दर्शन के मूल प्रवर्तक महर्षि कपिल के सम्बन्ध में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि वे उपनिषद्–कालीन थे, क्योंकि सांख्य–दर्शन का विवेचन सर्वप्रथम उपनिषदों में हुआ है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में सांख्य के प्रायः सभी मूलभूत सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में सांख्य के अनुसार पुनर्जन्मवाद, दुःखवाद और पुरुष सम्बन्धी विषयों पर विचार किया गया है। कठोपनिषद् में अव्यक्त से 'महान् आत्मा' का उद्गम दिखाया गया है और सांख्य की विकासवाद की पद्धति को सूचित किया गया है। प्रश्नोपनिषद् में सांख्योक्त मनोविज्ञान की सूचना दी गई है। इस प्रकार उपनिषत्काल में अथवा उससे कुछ काल पश्चात् सांख्य का प्रादुर्भाव हो गया था। भगवान् बुद्ध के समय में सांख्य सिद्धान्तों का विशेष प्रचार था। उन्होंने स्वयं 'आलार कालाम' से सांख्य की शिक्षा प्राप्त की थी और उनके दार्शनकि सिद्धान्तों में सांख्य का प्रभाव लक्षित होता है। भगवद्गीता में तो सांख्य के पुरुष और प्रकृति सम्बन्धी सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया गया है।

आजकल सांख्य सिद्धान्तों का सब से प्राचीन और सब से अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ ईश्वरकृष्ण–रचित 'सांख्य कारिका' है, जिसका रचनाकाल दूसरी–तीसरी शताब्दी माना जाता है। 'सांख्य प्रवचन सूत्र' और 'तत्व–समास' परवर्ती रचनाएं हैं। नीचे 'सांख्य कारिका' के आधार पर सांख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है।

सांख्य–सिद्धान्त

सांख्य के अनुसार 25 तत्त्व माने गये हैं जिनका ज्ञान दुःखों की निवृत्ति और मुक्ति के लिए आवश्यक है। इनमें से दो तत्त्व पुरुष और प्रकृति मूल पदार्थ हैं। दोनों अनादि और अनन्त हैं तथा नित्य हैं। पुरुष (आत्मा) चेतन है और प्रकृति अचेतन। शेष 23 पदार्थ प्रकृति के विकास से बनते हैं। वे हैं–बुद्धि, अहंकार, पांच तन्मात्राएं, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और पांच महाभूत।

सत्व, रजस् और तमस् नामक तीन गुणों की साम्यावस्था 'प्रकृति' है। 'सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'। यह प्रकृति ही संसार की उत्पत्ति का मूल कारण है। इसे अव्यक्त और प्रधान नामों से भी पुकारा जाता है, क्योंकि यह मूल रूप में अव्यक्त रहती है और मुख्य तत्त्व होने के कारण प्रधान है। 'प्रकरोतीति प्रकृतिः प्रधानम्' ('सांख्य कारिका' पर तत्त्व–कौमुदी)। प्रकृति अपनी अव्यक्त दशा में "अपरिमित, स्वतन्त्र, नित्य, सर्वव्यापक, निष्क्रिय, निराश्रित, अलिङ्ग, विवेकहीन और अचेतन" है, परन्तु अपनी व्यक्त दशा में वह क्रियाशील बन जाती है। उसके गुणों सत्व, रजस् और तमस् का स्वभाव चलनात्मक है, इसलिये वे उसकी अव्यक्त और व्यक्त दोनों अवस्थाओं में परिणामशील रहते हैं। प्रकृति की अव्यक्त दशा में वे अपने शुद्ध रूप में होते हैं और उस समय वे सदृश परिणाम के जनक होते हैं, परन्तु प्रकृति की "व्यक्त दशा में अर्थात् सृष्टि दशा में उनमें विषम परिवर्तन होता है।" इस विषम परिवर्तन को ही विकार कहा जाता है। प्रकृति की व्यक्त दशा में गुणों की साम्यावस्था के भंग होने पर गुणों का प्रभाव दिखाई पड़ता है और सृष्टि का क्रम चलता है।

कपिल तीन ही प्रमाण मानते हैं–प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। शब्द को 'आप्तवचन' या 'आप्तागम' नाम से पुकारा जाता है। उनका कहना है कि स्थूल पदार्थों का बोध प्रत्यक्ष अथवा दृष्ट प्रमाण से हो जाता है, परन्तु अतीन्द्रिय पदार्थों की सिद्धि के लिए अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है। जिन परोक्ष वस्तुओं की सिद्धि न तो प्रत्यक्ष प्रमाण से हो सकती है और न ही अनुमान प्रमाण से, उनको सिद्ध करने के लिये 'आप्तवचन' या 'आप्तागम' का आश्रय लेना पड़ता है। श्री ईश्वरकृष्ण कहते हैं–

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां
प्रतीतिरनुमानात्।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्।
(सांख्याकारिका 6)

इन्हीं तीन प्रमाणों के आधार पर समस्त बाह्य और आन्तरिक जगत् का सूक्ष्मतम पर्यवेक्षण किया जाता है और सारे चराचर जगत् के अन्तिम भावों को चार भागों में बांटा जाता है–(1) केवल प्रकृति, (2) केवल विकृति, (3) प्रकृति और विकृति और (4) न प्रकृति न विकृत। प्रकृति का अर्थ है 'करने वाला' (प्रकरोतीति प्रकृतिः) और विकृति का अर्थ है 'विकार'। उदाहरण रूप में जैसे–प्रकृति विश्व के सम्पूर्ण कार्य संघात का मूल है, इसलिए वह 'मूल प्रकृति' अथवा केवल प्रकृति है। उसका कोई मूल कारण नहीं है, इसलिए स्वयं किसी अन्य का कार्य अथवा विकार न होने से वह 'अविकृति' अर्थात् विकारशून्य है। (मूलप्रकृतिरविकृतिः –सांख्यकारिका 3) जो पदार्थ स्वयं तो विकार हैं, परन्तु किसी अन्य की रचना करने वाले अर्थात् उसकी प्रकृति नहीं हैं, वे 'केवल विकृति' है। जैसे–पांचों महाभूत और ग्यारह इन्द्रियों विकार है, परन्तु स्वयं किसी को करने वाले नहीं हैं, इसलिए वे 'केवल विकृति' हैं। महदादि जो पदार्थ प्रकृति भी हैं और विकृति भी हैं, वे 'प्रकृति और विकृति' कहलाते हैं। सांख्यों द्वारा स्वीकृत पच्चीस पदार्थों में से कुछ 'केवल प्रकृति' हैं, कुछ 'केवल विकृत' हैं, कुछ 'प्रकृति और 'विकृति' हैं और कुछ 'न प्रकृति और न विकृति' हैं। (कश्चिदर्थः प्रकृतिरेव, कश्चिदर्थो विकृतिरेव, कश्चिप्रकृतिविकृतिः, कश्चिदनुभयरूपः।) पच्चीस तत्त्वों का प्रकृति–विकृति–विभाजन निम्नलिखित हैः–

(1) केवल प्रकृति–मूल प्रकृति जो अविकृति है।

(2)केवल विकृति–पांच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) और ग्यारह इन्द्रियां (पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और मन।)

(3)प्रकृति–विकृति–महदादि सात पदार्थ। (महत्, अहंकार और पांच तन्मात्राएं)

(4)न प्रकृति, न विकृति–पुरुष।

इस प्रकार मूलप्रकृति 'केवल प्रकृति' अथवा 'अविकृति' है, पुरुष 'न प्रकृति है और न विकृति', महदादि सात पदार्थ 'प्रकृति' भी हैं और 'विकृति' भी तथा इन्द्रियां और महाभूत सोलह पदार्थ 'केवल विकृत' हैं।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।
(कारिका 3)

पुरुष–महर्षि कपिल और उनके अनुयायी सांख्यों के मतानुसार चेतन तत्त्व है। वह विवेकी और उदासीन है, परन्तु उसका ही चैतन्य प्रकृति एवं उसके विभिन्न विकारों में लक्षित होता है। वह त्रिगुणातीत है, इसलिए उसमें किसी प्रकार का परिणाम या विकार सम्भव नहीं। वह "नित्य, सर्वव्यापी, निष्क्रिय, अवयवहीन, स्वतन्त्र और कार्य–कारण से रहित" है। प्रत्येक शरीर में भिन्न होने से वह अनेक है और शुद्ध ज्ञानमय अथवा चिन्मय है। परन्तु यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि सांख्यों द्वारा स्वीकृत चिन्मय पुरुष (आत्मा) न तो जैनियों का 'अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य' ही है और न ही शंकराचार्य का अद्वैत आनन्दमय है। सांख्यों के मतानुसार आनन्द सुख ही है और इसलिए वह प्रकृति का धर्म है, न कि आत्मा का। शंकराचार्य के अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। वे एक ही हैं। माया के प्रभाव से जीव अपने आप को ब्रह्म से पृथक् समझता है। माया का पर्दा हट जाने पर दोनों में अद्वैतभाव आ जाता है और ऐक्य स्थापित हो जाता है। परन्तु सांख्य आत्मा अथवा पुरुष की अनेकता को स्वीकार करते हैं।

पुरुष अथवा आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य ईश्वर अथवा ब्रह्म को न मानने से बहुत से दार्शनिक महर्षि कपिल तथा उनके अनुयायी सांख्यों को निरीश्वरवादी मानते हैं। परन्तु कुछ ऐसे सांख्य भी हैं जो ईश्वर को

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

गोपालन से अद्भुत लाभ!

सुस्वास्थ्य एवं आर्थिक व सामाजिक समस्याओं के निदान के लिए गोपालन

● योगाचार्य ओमप्रकाश मस्करा

गीता में वैश्य का कर्त्तव्य गोपालन, कृषि एवं व्यापार करना दर्शाया गया है। वेदों में गोपालन से ऐश्वर्य प्राप्त होता है यह उल्लेख है। भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में प्रति व्यक्ति औसत 2 गाय, अकबर के समय यह औसत 1.5 (डेढ़) हो गई। वर्तमान में 125 करोड़ जनसंख्या के पीछे लगभग 7 करोड़ गायें बची हैं। गोपालन आज बोझ माना जाता है। इसके पीछे अंग्रेजों द्वारा भारत को गरीब बनाने और भारतीय संस्कृति को नष्ट करने की नीति थी।

रसोई–ईंधन व बिजली : आज भारत सरकार को 50 हजार करोड़ रुपये रसोई गैस (LPG Gas) एवं यूरिया कृषि–खाद पर सब्सीडी के लिए प्रतिवर्ष अलग–अलग खर्च करना पड़ता है। गोबर–गैस प्लान्ट स्थापित कर इसमें गाय के गोबर व मूत्र का प्रयोग कर रसोई–ईंधन एवं बिजली प्राप्त कर सकते हैं। इसके गैस को बिजली में Convert कर पानी के मोटर–पम्प इत्यादि भी चलाये जाते हैं। रसोई–ईंधन में लकड़ी का प्रयोग न होने से पेड़–पौधे की सुरक्षा से पर्यावरण प्रदूषित होने से बचेगा ओर Global Warming से भी हम बचेंगे। साथ ही बिजली का खर्चा बचेगा। खड़गपुर मे स्थापित नवनिर्मित गोशाला एवं गुरुकुल में विगत् 2 वर्षों से गोबर–गैस प्लान्ट का उपयोग ईंधन व बिजली के रूप में हो रहा है। इस गोबर–गैस प्लान्ट से बची हुई Slurry को खेतों में प्रयोग कर आर्गेनिक पद्धति द्वारा उत्पादित खाद्य–पदार्थों, शाक–सब्जियों से लगभग 150 व्यक्तियों का जीवनयापन हो रहा है। प्रतिमाह रसोई ईंधन एवं बिजली के खर्च में बचत हो रही है।

कृषि–खाद : देशी गाय के 15 किलो गोबर, 15 लीटर गौमूत्र तथा 250 ग्राम पुराना गुड़ एक हांडी में 15 दिनों के लिए रखने से खाद तैयार होती है । एक किलो इस खाद को 10 लीटर जल के साथ मिश्रित कर खेत में डालें या सुखाकर रखें और खेतों में व्यवहार कर आर्गेनिक फसल प्राप्त कर सकते हैं। हमारे किसान जो रासायनिक उर्वरकों व कीट–नाशकों का प्रयोग कर अधिकाधिक कर्ज के दल–दल में फंसकर आत्महत्या कर रहे हैं वे बचेंगे। आर्गेनिक खाद्य–फसलों, फलों, शाक–सब्जियों के उपयोग से कैंसर, शुगर, किडनी इत्यादि अनेकों शारीरिक रोगों से मुक्त होकर हम स्वस्थ रहेंगे।

कीट–नाशक : 15 लीटर देशी गाय का मूत्र, 3 किलो नीम की पत्ती, 1किलो लहसुन और 1किलो तम्बाकू (जड़ सहित) को एक हांडी में ढककर जमीन में 15 दिनों के लिए गाड़ दें। इसके बाद ताम्बे के बर्तन में 250 ग्राम हरी मिर्च डालकर उबालने के बाद जब आधा हो जाये तो छान लेवें। इस 5 प्रतिशत कीट–नाशक का 95 प्रतिशत जल के साथ मिलाकर इसका छिड़काव करने से फसलों की रक्षा होगी। इससे जहरीले कीटनाशकों से होने वाले विभिन्न प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलेगी और हम स्वस्थ रहेंगे।

गौमूत्र के सेवन से सैकड़ों बीमारियों का इलाज होता है। गौ विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, नागपुर को USA का पेटेन्ट प्राप्त है। अमेरिका के Agricultural Deptt. ने गाय को चलती–फिरती Laboratory माना है।

दिल्ली के I.I.T. के प्रोफेसर डॉ. विजय बिरेन्द्र ने गोमूत्र, अर्क आयुर्वेदिक दवाइयाँ, प्राकृतिक सिन्ट्रोनिला तेल के मिश्रण से सुगंधित फ्लोरवाश, फिनाइल, उपला/कांडा, मच्छर, कीड़े–मकोड़े भगाने का स्प्रे, साबुन, शैम्पू, मालिस तेल, मंजन, हवन सामग्री, मच्छर क्वाइल, नवग्रह धूप के उपयोग से गोपालन बढ़ेगा। एक गाय दस बार बछड़ा–बछड़ी पैदा करती है। अमूल डेयरी, मदर डेयरी व अन्य दूध–दही, घी, क्रीम, पनीर आदि से काफी आर्थिक लाभ उठा रहे हैं और उपरोक्त Byproducts भी बनाया जाये तो गोपालन आर्थिक रूप से अति लाभकारी होगा और बेरोजगारी की समस्या दूर होगी, स्वास्थ्य लाभ होगा और सामाजिक शान्ति भी होगी। गौमूत्र अर्क के नियमित सेवन से कैंसर, हार्ट, शुगर आदि रोगों में रामबाण का काम करता है। आशा है उपरोक्त जानकारी को अमल में लाने से गोपालन को बढ़ावा मिलेगा।

अध्यक्ष, वेद प्रचार ट्रस्ट,
नीलाम्बर बिल्डिंग 10 व 17 तल्ला,
28 बी शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता–17
मो. 9830064143

योग के लाभ

● जगरूपसिंह छिक्कारा आर्य

आज हमारे राष्ट्र में उच्चकोटि के योगियों की पीढ़ी विद्यमान हैं। आर्य जगत् के प्रसिद्ध धर्मात्मा योगी संसार के कल्याण के लिए मानव जाति को योग–दर्शन का पठन–पाठन सरलता से करा रहे हैं। इस ग्रंथ की व्याख्या जितनी सरल है, उतनी ही भाव की दृष्टि से बहुमूल्य है। योग–दर्शन ग्रन्थ रचकर महर्षि पतंजलि ने 'गागर में सागर' भर दिया है। इन महापुरुषों के द्वारा बताये गये पथ पर चलने से ही पारिवारिक जीवन सुखमय बनाया जा सकता है।

आज सभ्य संसार के लोग अपना हिताहित समझकर छोटे परिवार का निर्माण कर रहे हैं। यह ध्यान देने की बात है कि जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ तथा बलवान नहीं, वह कभी भी मानसिक चिन्ताओं तथा शारीरिक व्याधियों से मुक्त नहीं हो सकता। आज संसार में जो योग की धूम मच रही है, इसका श्रेय फक्कड़ बाबा रामदेव को है। भारत माता के महान् सपूत बाबा रामदेव जी ने दिन–रात पुरुषार्थ किया तथा संसार के लोगों का मुँह योग की ओर फेर दिया। आज स्थान–स्थान पर बीस–बाईस स्त्री–पुरुष योगाभ्यास करते दिखाई देते हैं। स्वामी जी के वेद प्रचार से संसार के रोगियों को बड़ा बल मिला है। हजारों रोगी स्वस्थ होकर योग के मदारी बन गये हैं।

अतः ईश्वराराधन, संध्या, पूजा, यज्ञ, नाम–स्मरण, प्रभु–गुण, कीर्तन, योगाभ्यास आदि कृत्यों के द्वारा आत्मिक ज्योति को प्रदीप्त करो। जो मनुष्य ईश्वर की उपासना करना चाहे वह यम और नियमों का अवश्य पालन करे। अतः जो उपासक संध्या को सागोपाग करेंगें उनको ईश्वर आदि तत्वों का यथार्थ भान होगा और अपने आप को सफल तथा कृत कृत्य मानेंगे। योग, यज्ञ, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना और उपासना का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अपने जीवन को धार्मिक और सुखमय बनाने का सबसे प्रथम और मुख्य साधन स्वस्थ तथा बलवान शरीर ही है। यहाँ हम अष्टांग योग के लाभ संक्षिप्त में प्रकाशित करते हैं।

'यम' (अष्टांग योग का प्रथम अंग) – 1. अहिंसा– समाज में फैली हिंसा की समाप्ति। 2. सत्य–सत्याचरण, धर्माचरण की व्याप्ति। 3. अस्तेय के पालन से पर–धन, पर–संपत्ति के प्रति निरासक्ति। 4. ब्रह्मचर्य के पालन से व्यक्ति व समाज की चरित्रहीनता, व्यभिचार एवं अश्लीलता जैसी घृणित बुराइयों से मुक्ति। 5. अपरिग्रह द्वारा अति संग्रह की प्रवृत्ति की परिसमाप्ति।

अष्टांग योग के दूसरे अंग नियम के लाभ–

1. शौच से भीतर–बाहर की पवित्रता का संपादन। 2. संतोष से व्यक्ति में पुरुषार्थ करके फल प्राप्ति में प्रसन्न रहने और दूख में शोकातुर न होने की वृत्ति का जागरण। 3. तप द्वारा सत्य मार्ग पर चलते हुए अडिग रहने की शक्ति की प्राप्ति और भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, मान–अपमान, विजय–पराजय से अविचलित रहने का अभ्यास। 4. स्वास्थ्य–प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण करने, 'ओ३म' का जप तथा आत्मोन्नति में सहायक साहित्य का अध्ययन करने से मन, वचन, कर्म में पवित्रता एवं उच्चता का स्थापन। 5. ईश्वर प्राणिधान अर्थात समस्त क्रिया–कलापों को अनन्य भक्ति से प्रभु को समर्पित करना, उनके फल की इच्छा भी न करना। इससे मनुष्य में आत्म बल की वृद्धि एवं ईश्वर में दृढ़ विश्वास का सृजन होता है।

तीसरे व चौथे अंग– 'आसन व प्राणायाम सभी रोगों का शमन, स्वस्थ तन व स्वस्थ मन एवं एकाग्रता की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अष्टांग योग के उपरोक्त प्रथम चार अंगों द्वारा एक स्वस्थ, निरोग, सुखी, समृद्ध एवं उन्नतिशील समाज का निर्माण हो सकता है। योग के पांचवें अंग 'प्रत्याहार' द्वारा व्यक्ति अपने मन पर विजय स्थापित कर लेता है। इस प्रकार मन के विजेता बनने से वह अपने आय इंद्रियों का भी विजेता 'जितेन्द्रिय' बन जाता है, चूंकि मन ही इंद्रियों को चलाने वाला है। छठा अंग–धारणा, मन को शरीर के किसी विशेष भाग स्थिर करना। सातवां–ध्यान और आठवां अंग समाधि – साधक को प्रभु दर्शन तक की यात्रा को पूर्ण कराने में सहायक बनते हैं।

सत्यार्थप्रकाश में योग तथा युक्ति के साधनों के लाभः–

1. अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है।
2. मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।
3. आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।
4. बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है और जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में शुक्र वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर ज्ञान प्राप्त कर लेगा। स्त्री भी योगाभ्यास करे।
5. आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान–विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।
6. नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घंटा पर्यन्त मुमुक्ष ध्यान अवश्य करें।
7. पाँच क्लेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ाकर ब्रह्म को प्राप्त होकर मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिए।

(स.प्र.–तृतीय, षठ, सप्तम व नवम समुल्लास एवं ऋग्वेदादि भाष्यभूमि का उपासना विषय)

आर्यसमाज शिवाजी नगर, गुड़गाँव

सेकुलरवादी विमर्श की आड़ में:

परत-दर-परत खुलता राष्ट्रद्रोही चेहरा

● हरि कृष्ण निगम

आज के राजनीतिक विमर्श में हमारे कुछ बुद्धिजीवियों ने एक अजीब तरह की अराजकता को प्रश्रय देकर अंग्रेजी मीडिया के एक बड़े वर्ग में, जहाँ तक हिन्दू धर्म की व्याख्या का प्रश्न है, एक विकृत दृष्टि दिखलाई है। एक ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास किया गया जहाँ उनकी दुराग्रही दृष्टि व हठधर्मिता को मात्र हिन्दू आस्था का ही अहितकर राजनीतिक पक्ष दिखता है और कभी कभी लगता है कि सेमिटिक धर्मों की प्रच्छन्न वकालत के लिए इस दुष्प्रचार में जी जान से वे सब लगे हुए हैं। उन्हें इतर धर्मों की, भारत सहित विश्व भर में चल रही गलाकाट प्रतिद्वन्द्विता और उनके अपनी श्रेष्ठता का लगातार दावा करने की प्रवृत्ति में कुछ भी अटपटा नहीं दिखता है। हमारे देश के विकृत, दिशाहीन और हिन्दू-विरोधी राजनीतिक दलों की अपनी मानसिकता का लाभ उठाते हुए आज सहसा ऐसे प्रकाशनों की बाढ़ आ गई है जिसमें लगता है अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की जगह अनेक बड़े लेखकों ने राजनीति अथवा अनेक लाबियों की गुलामी स्वेच्छा से स्वीकार की है। विडम्बना यह है कि नवउदारवाद और नेहरूवादी पारम्पारिक सामाजिक विचारधारा या दर्शन के समर्थन के बहाने अंग्रेजी दैनिकों का एक प्रभावी वर्ग एक ओर व्यवस्था विरोधी छवि का ढोंग करता है दूसरी ओर घोर हिन्दू-विरोध द्वारा वामपंथियों एवं अन्तराष्ट्रीय लाबियों का स्वेच्छा से मोहरा बनने को राजी हो जाता है।

हाल के कुछ प्रकाशनों और मीडिया में उनके प्रचार के स्तर को देखते हुए यह संदेह एक कटु यथार्थ बन चुका है। हाल में विनय लाल द्वारा सम्पादित 287 पृष्ठों का आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित ग्रंथ जिसका शीर्षक है "पोलिटिकल हिन्दूइज्म: दि रिलीजिय इमेजिनेशन इन पब्लिक स्फियर्स" यह सिद्ध करने में कुलांचें भर रहा है कि 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की राष्ट्रवाद की अवधारणा ने स्वतंत्रता के बाद हिन्दू धर्म का पूर्ण रूप से राजनीतिक रूपांतरण कर दिया। बहुसंख्यकों के दक्षिणपंथी रुझानों का हव्वा खड़ा कर लेखक कहता है कि 'हिन्दुत्व' की अवधारणा से भी एक कदम आगे 'राजनीतिक हिन्दुत्व' है जो देश के दूरगामी हित में नहीं है। स्पष्ट है कि हिन्दू संगठनों की हर उस गतिविधि या रणनीति को जिसको द्वारा वे राष्ट्रविरोधी, अवांछनीय, संकीर्ण और विजातीय तत्वों के प्रवेश पर अंकुश लगाना चाहते हैं, वे चाहे देश के वामपंथी या सेकुलर विचारक हों या जिनकी धर्म निरपेक्षता की व्याख्या मात्र अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण तक सीमित है, उन्हें बौखला देती है। यह कड़वा सच है कि इस देश के कथित प्रगतिशील कहलाने वाले लेखक उदार, निरन्तर संवाद को प्रोत्साहन देने वाले, समीक्षा एवं नित्य नए तर्कों को, विचारों को आत्मसात करनेवाले हिन्दू दर्शन को साम्प्रदायिक, असहिष्णु और वर्गशत्रु मानते हैं। वे अंधे बन जाते हैं या न देखने का ढोंग करते हैं जब इतर धर्मों की आक्रामता या अनुयाइयों को बढ़ाने की अंधी जिद से पाला पड़ता है। क्या इसे पढ़े-लिखों की आज की विचारधारा का आतंकवाद नहीं कहा जा सकता है?

बहुसंख्यकों के विरूद्ध हाल में विषवमन करने वाले लेखकों में ज्योतिर्मय शर्मा की 'वाइकिंग' नामक प्रकाशन गृह द्वारा छापी पुस्तक 'टेरीफाइंग विज़न' शायद सबसे आगे है जिन्होंने हिन्दू राष्ट्रवाद की अवधारणा की निन्दा करते हुए चिरपरिचित मार्क्सवादी शब्दवली प्रयुक्त की है। संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधव सदाशिव गोलवालकर पर उंगली उठाने के साथ साथ इस लेखक ने तथ्यों व साक्ष्यों के विद्रूपीकरण, मिथ्याकरण और सन्दर्भों को सुविधानुसार कुटिलता के साथ तोड़ा मरोड़ा है। इसी लेखक की जब सन् 2003 में 'पेंगुइन' द्वारा प्रकाशित पुस्तक "हिन्दुत्व : एक्स्प्लोरिंग द आइडिया ऑफ हिन्दू नेशनलिज्म" सामने आई थी देश के अंग्रेजी प्रेस ने उसे आवश्यकता से अधिक महत्व दिया था। हाल की उनकी पुस्तक का शीर्षक "टेरीफाइंग विज़न" तो इतनी निन्दात्मक है जैसे हिन्दू संघटनों की विचारधारा ही देश को आतंकित या भयभीत करने वाली हो। हम विस्मृत नहीं कर सकते हैं कि देश की बडी अंग्रेजी पत्रिका 'इन्डिया टुडे' ने इसकी समीक्षा को ही "बोगीमैन इन सैफ्रन" शीर्षक से छापी थी। हममें से कदाचित बहुत से लोगों को यह ज्ञात नहीं होगा कि अंग्रेजी में बोगीमैन का अर्थ होता है- प्रेतात्मा, शैतान, भूत, हौआ! वामपंथी मृगमरीचिकाओं में लिप्त, हिन्दू-विरोधियों का स्वाभाविक मित्र यह लेखक जो कोई भी मार्क्सवादी व्याख्या या नेहरूवादी विचारधारा की वैधता पर प्रश्नचिन्ह लगाने का प्रयास करता है उस पर 'पुनरुत्थानवादी', 'साम्प्रदायिक' और तत्ववादी या दक्षिणपंथी होने का लेबिल जड़ता है। हिन्दुत्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति सर्वसमावेशक है-यह ऐसे लोग भूल जाते हैं। यही हमारी पहचान का मुख्य गुण पहले भी था और आज भी है, इसे नकारा नहीं जा सकता है।

हिन्दुओं के विरुद्ध दीर्घकालीन वैरनीति के प्रमाण के रूप यदि ऊपरी रूप से चाशनी में लिपटी कोई बृहद पुस्तक यदि हाल प्रकाशित हुई है तो वह है "विश्व के हिन्दू धर्म के सर्वाधिक महत्व की अध्येता" वेंडी डोनिगर का 779 पृष्ठों का ग्रंथ-'द हिन्दूज : एन आल्टरनेटिव हिस्ट्री!' पेंगुइन प्रेस, न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित यह ग्रंथ हमारे देश में कदाचित सिर आंखों पर अंग्रेजी मीडिया द्वारा शायद इसलिए बैठाया जा रहा है क्योंकि इसकी व्याख्या की पद्धति वैसी ही है जैसी रोमिला थापर, इरफान हबीब, हरबंस मुखिया या विपिनचंद्र ने शुरू की थी। इस पहल में राष्ट्रवादियों के विरुद्ध मिथ्याकरण की मोर्चेबंदी, दुराव-छिपाव, विद्वता के मुखौटे के पीछे मनमानी प्रस्थापनाएं और प्राचीन आख्यानों को सामयिक दृष्टि के चश्मे में फिट करना भी शामिल है। यहाँ तक कि रामायण, महाभारत और अनेक प्रचीन ग्रंथों की वर्णित गाथाओं व आख्यानों को वर्ग संघर्ष व आज के नए विचारों के फार्मूलों में जैसे तैसे व्याख्यायित करके निष्कर्ष निकालने पर रोष कम, मनोविनोद अधिक होता है। वे यह भी प्रश्न उठाती हैं कि क्या हिन्दू धर्म का विकास भी दूसरे रूप में होता यदि हिन्दू सम्राट या शासक ईसाई और मुस्लिम शासकों की तरह उपमहाद्वीप के बाहर जाकर विश्व के देशों को विजय करते और धर्म का आक्रामक प्रसार करते? यह प्रश्न उठाना ही भ्रामक है क्योंकि अनेक विश्वासों का सह-अस्तित्व सदैव से हिन्दुत्व की आत्मा रही है। बिना तलवार उठाए या हिंसा का सहारा लिए सुदूर दक्षिण एशिया व द्वीपों में हिन्दुओं की सदियों पहले वैचारिक व सांस्कृतिक विजय हो चुकी थी और उनके पुरातात्विक अवशेषों के विषय में दुनियाँ जानती है। इसी तरह वे प्रश्न उठाती हैं कि क्या भारतीय महिलाओं का आज का जीवन भिन्न प्रकार का होता यदि सीता का चरित्र, जैसा वाल्मीकि रामायण में चित्रित किया गया है, देश का रोल माडेल बनता? इस प्रकार के प्रश्न 'किन्तु' और 'परन्तु' की भ्रान्ति द्वारा मिथ्या संभावनाएं उत्पन्न कर हमारे आराध्य प्रतीकों पर अपने झूठे वैचारिक महत्व को अधिक आरोपित करते हैं, हमारे प्राचीन इतिहास की निष्पक्ष प्रस्तुति कम करते हैं। तात्कालिक आधुनिक रुझानों की चाशनी में गम्भीर विमर्श को भी सतहा बनाने की भोंडी कोशिश की गई है। वे दूसरे अनेक लेखकों की तरह यह भी लिखना नहीं भूली हैं कि आज का हिन्दू नवोत्थान पश्चिमी शिक्षा का लाभ उठाने वाले सवर्ण हिन्दुओं की हीनता ग्रंथि के कारण है जिसकी जड़ें औपनिवेशिक काल के अंग्रेज मिशनरियों के धर्मान्तरण के प्रयासों में छिपी हैं। यह तर्क सर्वथा असत्य है पर देश के वामपंथी या कथित सेकुलरवादी लेखकों द्वारा अनेक रूपों में उठाया जा रहा है। एक प्रकार की बौद्धिक विलासिता के माध्यम से अन्तहीन विवादों में समय गंवाया गया है कि हिन्दू धर्म में, यह स्वीकार करने के बाद भी कि यह विश्व की प्राचीनतम आस्था है, क्या अच्छा है और क्या बुरा; जिन आस्थाओं पर कुठाराघात हो रहा है, उसकी कड़वी सच्चाई जानना अपेक्षित है और यदि हम कहें कि सभी धर्म समान शिक्षा देते हैं तब वह एक अयथार्थ, काल्पनिक दुनियाँ में जीना होगा। इस कटु सत्य का अज्ञान हमारी राष्ट्रीय अस्मिता के लिए अभिशाप बना रहा है। यह सिर्फ हम ही हैं जो कहते हैं कि सारे रास्ते एक ईश्वर की ओर जाते हैं, दूसरे नहीं। दूसरे तो कहते हैं कि तुम हम में से एक नहीं हो, क्योंकि हमारी आस्था सर्वश्रेष्ठ है।

हिन्दू आस्था के विरुद्ध विष वमन करने वालों में आज कांचा इलैया का नाम सबसे आगे कहा जा सकता है जिनकी हाल में प्रकाशित पुस्तक 'पोस्ट-हिन्दू इण्डिया' उन राजनीतिक दलों के एजेण्डे का समर्थन करती प्रतीत होती है जो बृहद हिन्दू समाज को छिन्नभिन्न होते देखकर आल्हादित हो सकते हैं। इसके पहले भी उनके ग्रंथ 'व्हाई आई एम नॉट ए हिन्दू?' ने दलितों के शोषण से अधिक सवर्ण वर्ग को कोसने में और उनके विरुद्ध अभद्र टिप्पणियाँ करने में सारी ताकत झोंक दी थी। उनके तर्क की मौलिक त्रुटि यह है कि वे हिन्दू धर्म को ब्राह्मणवाद का पर्याय मानते हैं और वे अनेक विश्वासों, सांस्कृतिक परम्पराओं और समयानुसार उनके बदलने की क्षमता को नहीं देख पाते हैं। समाज के दूसरे वर्गों पर उनकी राजनीतिक घृणा की तो यह स्थिति रही है कि वे अमेरिकी कांग्रेस के समक्ष भी भारत में हो रही दलितों की कथित प्रताड़णा से निपटने के लिए अमेरिकी सिनेटरों से हस्तक्षेप की मांग कर चुके थे। कांचा इलैया की अभद्र टिप्पणियों के बावजूद हिन्दू धर्म पर कदाचित आंच नहीं आएगी क्योंकि इसका अभूतपूर्व लचीलापन देश की कुटिल राजनीति के हर दौर में इसे और सशक्त बनाने की क्षमतायुक्त है।

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

पढ़ो वेद का ज्ञान

पढ़ कर वेद का ज्ञान, मिटा लो अज्ञान–अरे नादान।।
अग्नि, वायु थे ऋषि महान्, आदित्य, अंगिरा हुए विद्वान्।

मिला उन्हें प्रथम वेद का ज्ञान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।
आदि ग्रन्थ है वेद कहाता, ब्रह्मज्ञान और मुक्ति का दाता।
अन्य पथ का मत करो गुमान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

ईश्वर है सृष्टि रचता, भोगी जीव कर्म है करता।
प्रकृति है भोग्य निधान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

वेदों में कोई इतिहास नहीं है, जादू–टोना औ बकवास नहीं है।
देखो भरा पड़ा है सद्ज्ञान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

सायण ने कितना अनर्थ किया, महीधर–उव्वट ने अनुचित अर्थ किया।
दयानन्द ने दिया सही अर्थ का ज्ञान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

वेदभाष्य का नवयुग आया, दयानन्द ने है सत्पथ दिखलाया।
आया देखो कैसा स्वर्ग विहान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

समता का है यह पाठ पढ़ाता, नहीं भेदभाव से रखता नाता।
सर्वहित बना एक विधान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

दयानन्द का नाद यही है, सत्यज्ञान का स्रोत यही है।
सद्गुण की है यह खान, पढ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

संस्कारों की है महिमा गाता, है सबके कर्त्तव्य सदा बताता।
सुख पावो इनकी गरिमा जान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

सार चतुर्वेद का है गायत्री, यही कहाती है सावित्री।
इससे नहीं पावक छन्द महान्, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

प्रभु का नाम गुणों के अनुरूप, वह सत् चित् आनन्दस्वरूप।
प्रमुख ओम् नाम को जान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

परमेश्वर का है रूप निराकार, कभी न लेता वह अवतार।
घट–घट में उसको व्यापक जान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

पापों से वह बिंधा नहीं है, विकारों से वह भरा नहीं है।
'वेद' ने किया यही बखान, पढ़ लो वेद का ज्ञान–अरे नादान।।

पण्डित वेद प्रकाश शास्त्री
शास्त्री भवन, 4–ई कैलाश नगर,
फाजिलका–152 123 (पंजाब), मो. 9463428299

परिवारों के आर्य बनने से ही आर्य समाज की उन्नति होगी।

आजकल अधिकांश आर्य सदस्यों के परिवार अर्थात् पत्नी, पुत्र तथा पुत्रियां आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों तथा अन्य उत्सवों में नहीं आते–जाते। वास्तव में हमने महर्षि दयानन्द के कहने के अनुकूल आचरण नहीं किया। उन्होंने 31 दिसम्बर 1880 को आर्य समाज पुलवान के मंत्री मास्टर दयाराम वर्मा को एक पत्र में यह लिखा था कि जनगणना में धर्म के खाने में वैदिक धर्म और जाति के खाने में आर्य लिखाया जाए और पंजाब में सब आर्य समाजों को यह बता दिया जाए परन्तु अधिकांश आर्य समाजियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और अब तक धर्म के खाने में हिन्दू ही लिखते जा रहे हैं। आर्य समाज को शिरोमणि सार्वदेशिक सभा को वैदिक धर्म स्थापना घोषित करनी चाहिए।

आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया जबकि इस बारे में तो खूब प्रचार होना चाहिए था। यह ठीक है कि हम हिन्दुओं से अलग नहीं हैं, इसलिए कोष्ठक में वैदिक धर्म के साथ हिन्दू भी लिख–लिखा सकते हैं। यह प्रचार सार्वदेशिक सभा तथा प्रादेशिक प्रतिनिधि सभाओं द्वारा होना चाहिए कि सभी आर्य सदस्य सरकारी तथा अन्य सभी कर्मों में धर्म के खाने में वैदिक धर्म लिखाएं।

महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि के गृहस्थाश्रम संस्कार में यह लिखा है कि अपने घरों में प्रातः व सायं संध्या तथा हवन किया करें, जिसकी संक्षिप्त विधि है।

सभी आर्य जन अपनी सन्तानों के विवाह गुण–कर्मानुसार जन्म जाति का विचार किए बिना आर्य विचारधारा के लोगों के साथ किया करें। तभी हमारे परिवार आर्य बन सकते हैं।

अपने पुत्रों की आयु 18 वर्ष से ऊपर होने पर, आर्य समाज के सदस्य बनाएं तथा सब की पत्नियां आर्य स्त्री समाज की सदस्य बनें तथा उनके सत्संग में जाया करें।

मेरा विश्वास है कि उपरोक्त बातों के अनुकूल आचरण करने से हमारे परिवार आर्य समाजों में आने लगेंगे और वैदिक धर्म अस्तित्व में आ जाएगा। कवि की यह चार पंक्तियां सब को याद रखनी चाहिएं। महर्षि दयानन्द ने कहा था कि मैंने कोई समाज कोई नया पथ नहीं बनाया वैदिक धर्म के प्रचार के लिए इसे बनाया है। यह एक संस्था अथवा आन्दोलन है।

आर्य हमारा नाम है, वैदिक हमारा धर्म।

ओम् हमारा ईश है, यज्ञ योग हमारा कर्म।।

सत्य हमारा लक्ष्य है, गायत्री महामंत्र।

भारत हमारा देश है सदा रहे स्वतंत्र।।

अश्वनी कुमार पाठक,
बी–4/256 सी
केशवपुरम, दिल्ली–110035,

****

हम बीमार क्यों होते हैं

आपने देखा होगा कि हस्पतालों में मरीजों की लाइनें लगी रहती हैं। कभी आपने सोचा है कि ये बीमारियां क्यों आती हैं? आयुर्वेद के अनुसार जब हम आहार–विहार में कुपथ्य करते हैं तब रोग में फंस जाते हैं। यह पूर्ण सत्य है। जब मन और और इन्द्रियों के वशीभूत होकर गलत काम करोगे तो बीमारी आएगी।।

नोट करो – स्वास्थ्यरुपी भवन के तीन स्तम्भ हैं।

1. आहार (भोजन) 2. निद्रा 3. ब्रह्मचर्य

यदि स्वस्थ रहना चाहते हो तो इन तीन स्तम्भों को सुन्दर सुदृढ़ बना कर रखो। शुद्ध सात्विक भोजन करो। मांस, मछली, अण्डा मनुष्य का भोजन नहीं है। इनके खाने से बुद्धि भ्रष्ट होती है। और शरीर में अनेक प्रकार के भयंकर रोग लग जाते हैं। शाकाहारी भोजन ही लाभदायक हितकर है। सच पूछो तो दूषित भोजन के कारण ही भ्रष्टाचार फैला रहा है। क्योंकि जैसा आहार होगा वैसा ही मन में विचार होगा। विचारों जैसा ही व्यवहार होगा। विस्तार से बचने के लिए सारांश में लिखा है। अपना भोजन सुधारो। मन लगाकर परिश्रम करो और पूरा आराम करो। संयम से जीवन यापन करो।

देवराज आर्यमित्र
नई दिल्ली – 64

****

वृद्धों में दमा (सांस) रोग

वृद्धों में दमे का रोग व्यापक स्तर पर होता है। खान–पीन से बचाव की सलाह।

1. शीत ऋतु में तुलसी और अदरक के रस का प्रयोग सुबह शाम करें शहद के साथ।
2. ताज़ी सब्जियों और फलों का प्रयोग ज्यादा करें।
3. शीत ऋतु में सेब का प्रयोग ज्यादा लाभप्रद है।
4. वजन को कम करने का प्रयास करें।
5. भोजन सादा और ताज़ा होना चाहिए। यथा सम्भव भोजन को तीन या चार बार में ग्रहण करें।
6. डिब्बाबंद या फास्टफूड से परहेज करें।
7. चिकित्सकों की सलाह अवश्य लेते रहें।

कृष्ण मोहन गोयल
113–बाज़ार कोट, अमरोहा

☞ पृष्ठ 07 का शेष

महर्षि कपिल

मानते हैं। उनके मतानुसार 'सांख्य सूत्र' के 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र का अर्थ 'ईश्वराभावात्' नहीं है। महाभारत में सांख्यों के तीन सम्प्रदाय माने गए हैं–छब्बीस तत्त्व मानने वाले, पच्चीस तत्त्व मानने वाले और चौबीस तत्त्व मानने वाले। छब्बीस तत्त्व मानने वाले ईश्वर को छब्बीसवां तत्त्व स्वीकार करते हैं। पच्चीस तत्त्व मानने वाले ईश्वर की पृथक् सत्ता की आवश्यकता नहीं मानते।

प्रकृति– सत्त्व, रजस् और तमस् नामक तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रकृति सब पदार्थों की उत्पत्ति का मूल कारण है। वह ही सब की कर्त्री है। इंगलिश में उसे 'प्राइमल नेचर' (Primal Nature) अथवा 'कॉस्मिक सब्स्टेंस' (Cosmic Substance) कहा जाता है। प्रकृति के ही व्यक्त रूप से क्रमशः महत् (बुद्धि), अहंकार, पांच तन्मात्राओं आदि का जन्म होता है। प्रकृति को केवल युक्तियों से सिद्ध किया जा सकता है और योगाभ्यास से देखा जा सकता है।

गुण– गुण संख्या में तीन हैं–सत्व, रजस् और तमस्। ये प्रकृति की शक्तियां हैं जिन्हें उस से पृथक् नहीं किया जा सकता। प्रकृति वास्तव में इन का ही सामूहिक रूप है। न तो प्रकृति के बिना गुण रह सकते हैं और न ही गुणों के बिना प्रकृति। प्रकृति गुणों के द्वारा ही सृष्टि की रचना करती है। 'सत्व' गुण 'सत्' से व्युत्पन्न होता है। यह प्रकृति की वह शक्ति है जो उसकी सभी अभिव्यक्तियों को प्रकाशित करती है और व्यक्त करती है। सत्व गुण उच्चगामी है और अपने आप को प्रकाश के रूप में व्यक्त करता है। इस में स्वतः गति नहीं होती और न ही यह क्रिया–प्रतिक्रिया की योग्यता रखता है। इस में उत्तेजना नहीं होती, वरन् साम्यभाव रहता है। रजोगुण 'रञ्ज्' से व्युत्पन्न होता है और यह प्रकृति की वह शक्ति है जो अन्य दोनों गुणों को प्रभावित करती है और उन्हें गतिशील बनाती है। यह गुण क्रियाशील और उत्तेजक होता है। इसका कार्य है वस्तुओं को क्रियाशील बनाना, प्रतिरोध पर विजय पाना और कार्य करना। प्रकृति में जो गतिशीलता और परिवर्तनशीलता दिखाई देती है, वह सब इसी गुण के कारण हैं। यह अपने आप को झंझावात की शक्ति के समान व्यक्त करता है। 'तमोगुण' का अर्थ है अन्धकार। यह प्रकृति की उस शक्ति का द्योतक है जो गतिरोध उत्पन्न करती है और जो रजोगुण तथा सत्वगुण के विरुद्ध कार्य करके उन्हें आवृत कर लेती है। यह प्रकृति की रोधक और बन्धक शक्ति है और संसार में निम्नगति का कारण है।

इन तीनों गुणों से ही प्रकृति अपने आप को संसार के रूप में व्यक्त करती है। ये तीनों सदैव साथ–साथ रहते हैं, परन्तु कभी किसी का प्राधान्य और आधिक्य होता है और कभी किसी का। ये गुण ही पुरुष अथवा आत्मा के बन्धन तथा पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। इनकी साम्यावस्था की अनुभूति प्राप्त करना ही प्रकृति की अव्यक्तावस्था को जानना है और इन के बन्धन से सर्वथा मुक्त होकर अपने स्वरूप को देखना ही जीव की मुक्ति है।

प्रकृति का विकास–पुरुष और प्रकृति तीनों गुणों के संयोग से आत्मा (जीवात्मा) तथा विश्व के अन्य पदार्थों की रचना करते हैं। सांख्य सिद्धान्त के अनुसार पुरुष चेतन होने पर भी अकर्ता है और प्रकृति अचेतन होने पर भी कर्त्री है। जगत् की रचना प्रकृति ही करती है, पुरुष तो केवल द्रष्टा और साक्षिमात्र है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से प्रकृति का प्रथम विकार 'महत्' अथवा 'बुद्धि तत्त्व' उत्पन्न होता है। स्वच्छ बुद्धि पर चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ने से बुद्धि को अपने में चेतनता प्रतीत होने लगती है और बुद्धि के संयोग से पुरुष अकर्ता होते हुए भी अपने आप को कर्ता तथा कर्म–फलों का भोक्ता समझने लगता है। यह पुरुष की भ्रान्ति है, क्योंकि वास्तविक कार्य तो प्रकृति और उससे उत्पन्न होने वाली विकृति बुद्धि कर रही होती है। पुरुष का बन्धन यहीं से आरम्भ होता है जिस के फलस्वरूप उसे कर्मों का फल भोगने के लिए पुनर्जन्म लेना पड़ता है।

'महत्' अथवा 'बुद्धि' से अहंकार उत्पन्न होता है। 'अहंकार' का सम्बन्ध अहंभाव से रहता है। यहाँ इसका सम्बन्ध व्यक्तिकरण से है। यह तत्त्व ही समरसता के स्थान पर संकुचितता, पृथक्ता और विविधता का कारण बनता है। अहंकार से सोलह का वर्ग षोडशक (मन, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियाँ और पांच तन्मात्राएं) उत्पन्न होता है। पांच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। सांख्यकारिका में लिखा है–

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि।।
(कारिका 22)

'मन' शब्द की व्युत्पत्ति 'मन्' धातु से होती है। तदनुसार 'मन' का अर्थ है 'चिन्तनशील'। 'महत्' तत्त्व में बुद्धि की प्रधानता होती है और 'मन' में चिन्तन की। चक्षु, श्रोत्र, प्राण, रसना और स्पर्शन पांच ज्ञानेन्द्रियां है, तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ पांच कर्मेन्द्रियां हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांच तन्मात्राएं हैं। ये इन्द्रियों के सूक्ष्म तत्त्व होते हैं, जिन की उत्पत्ति भूतादि और रजोगुण के सहयोग से होती है। आकाश, वायु, तेज, आपः (जल) और पृथ्वी पांच महाभूत हैं। तन्मात्राओं की अभिव्यक्ति महाभूतों के द्वारा ही होती है।

इस पर सृष्टि–रचना का यह सारा क्रम प्रकृति द्वारा ही चलाया जाता है। वह ही इस सृष्टि की कर्त्री है। श्री ईश्वरकृष्ण कहते हैं, "इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।" प्रकृति इस जगत् की रचना कर्मफल–प्रदान आदि कार्यों के लिए करती है।

मुक्ति– सांख्य के अनुसार मुक्ति दो प्रकार की है–जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। मुक्ति को दिलाना ही सांख्य का उद्देश्य है। ऊपर बताया गया है कि प्रकृति ही कर्त्री है और सारा काम वही करती है। उन कामों से उत्पन्न होने वाले फल सुख, दुःख, मोह आदि भी उसी के हैं। परन्तु पुरुष बुद्धि (प्रकृति के प्रथम विकार) के संयोग से अपने को उन कामों का कर्ता और फल का भोक्ता समझ लेता है। यह उसका भ्रम है। प्रकृति के विकास के साथ चेतन पुरुष मोहग्रस्त होने के कारण जन्म, जीवन और मृत्यु के बन्धन में पड़ जाता है। सांख्य–दर्शन पुरुष और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान दे कर पुरुष में विवेक उत्पन्न करता है। उस विवेक के आधार पर पुरुष सब कामों को अपना न समझ कर प्रकृति का समझने लगता है और जान जाता है कि वह स्वयं तो त्रिगुणातीत है तथा स्वतन्त्र और कार्य–कारण से रहित है। न वह बन्धन में पड़ सकता है और न ही उस बन्धन से मुक्त होता है। बन्धन में पड़ने वाली और उस से मुक्त होने वाली तो स्वयं प्रकृति है। प्रकृति जब देखती है कि पुरुष ने उसे समझ लिया है तो वह स्वयं उसे बन्धन से मुक्त करने के लिए उत्कण्ठित हो उठती है और पीछे हटने लगती है। वह लज्जाशील रमणी के समान पुरुष के सम्मुख आने में संकोच करने लगती है अथवा नर्तकी के समान अपना नाच दिखा कर लुप्त हो जाती है। पुरुष समझता है कि "मैंने प्रकृति देख ली है" और प्रकृति समझती है कि "मैं देख ली गई हूँ।" उस अवस्था में उन दोनों का सम्बन्ध रहने पर भी सृष्टि का कुछ प्रयोजन नहीं रह जाता। यही पुरुष की जीवन्मुक्ति है, जो शरीर छूटने पर विदेहमुक्ति में बदल जाती है। श्री ईश्वरकृष्ण ने इन्हीं भावों को शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया है।

"प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति,
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य",
"रंगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्,
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य निवर्तते प्रकृतिः"
"दृष्टा मयेत्युपेक्षक एको दृष्टाहमित्युपरमत्यन्या
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य।"
(सां. का. 61, 59,66)

श्री ईश्वरकृष्ण के कथनानुसार तत्त्वाभ्यास करने पर "नास्मि न मे नाहम्" इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ही अपरिशेष ज्ञान है। यह संशय और विपर्यय से रहित होने के कारण सदा शुद्ध और केवल ज्ञान है।

एवं तत्वाभ्यासान्नास्मि न में नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।

यही महर्षि कपिल के सांख्य–दर्शन का महत्त्वपूर्ण उपदेश है और इसी को भगवान् कृष्ण ने "नाहं किञ्चित्करोमि" कह कर अनासक्तिवाद के रूप में प्रतिपादित किया है।

'विश्व के दार्शनिक'
पुस्तक से सामार

☞ पृष्ठ 09 का शेष

परत–दर–परत खुलता...

हिन्दू धर्म में रहते हुए इसको नकारने की प्रवृत्ति एक अनूठी स्थिति है क्योंकि ऐसे लोग भलीभांति जानते हैं कि दूसरे धर्मों में विधर्मियों से अधिक मात्रा में घृणा या दण्ड उन्हीं को दिया जाता है जो सहधर्मी होकर 'ब्लास्फेमी' या ईशनिन्दा के आरोपी होते हैं। शायद इसी कारण से सार्वजनिक रूप से, इसे बिना त्यागे, कुछ लोग राजनीतिक प्रसिद्धि के मन्तव्य से यह कहने में रस लेते हैं कि कि "हम हिन्दू क्यों नहीं हैं?" इसी तरह कुछ दिनों पहले कुछ और पुस्तकें भी भड़काऊ शीर्षकोंयुक्त सामने आई थीं जिनमें से 'हिन्दू धर्म या कलंक?' (ल.र. बाली), 'हम हिन्दू नहीं '(कान्हा सिंह नामा), विश्व हिन्दू परिषद एण्ड इण्डियन पालिटिक्स (मंजरी काटजू) प्रमुख हैं। इनमें से कुछ मूल रूप से बहुत वर्षों पहले प्रकाशित हुई थीं पर लम्बे अन्तराल के बाद उनका पुनर्प्रकाशन सामाजिक समरसता भंग कर सकता है। यह भी स्पष्ट है कि हिन्दू समाज के विरुद्ध एकजुट हुए दुष्ट बलों और उनकी धुरी का सामना करने के लिए प्रबल राष्ट्रीय अहसास और सर्वसमावेशी अवधारणा के प्रति प्रतिबद्धता अपेक्षित है। कुछ दिनों पूर्व मुम्बई के कुछ अंग्रेजी समाचार पत्रों में मराठी लेखक लक्ष्मण माने की मुख पृष्ठ पर आज के सर्वाधिक महत्व के लेखक के रूप में उनके हिन्दू–विरोध के कारण चर्चा हुई थी। इसी तरह भालचन्द्र निमाडे के 'हिन्दू' नामक उपन्यास लिए मोटी सुर्खियाँ प्रयुक्त की गई हैं जिनमें कहा गया है, ब्राह्मणों और हिन्दूवादी संगठनों ने हिन्दू समाज को नष्ट कर दिया है।" क्या इस निन्दा के पीछे मीडिया का दुराग्रह भी स्पष्ट नहीं है?

ए–1802 पंचशील हाइट्स महावीर नगर,
कान्दिवली (प.) मुम्बई–400067
मो. 9820215464

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. **U(C)-103 \2015-17**
Posted at N.D.P.S.O. ON 24-25 \02 \2016
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 **39\57**

☞ *पृष्ठ 01 का शेष*

नई दिशा-नया संकल्प...

हो। उन्होंने कहा कि डी.ए.वी. और आर्य समाज को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि क्या करो, क्योंकि इनकी मूलधारा राष्ट्र और विश्व के कल्याण के साथ जुड़ी हुई है इसलिए इक्कीसवीं सदी के भारत की जिस भी रूप में भलाई हो, वैसा कुछ करने का संकल्प लेकर ऋषि दयानन्द को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

श्री नरेन्द्र मोदी ने इस अवसर पर डी.ए.वी. के 130 वर्षों के इतिहास को दर्शाती हुई एक कॉफी टेबल बुक **'डी.ए.वी. : ए वे ऑफ लाइफ'** का लोकार्पण किया। उन्होंने डी.ए.वी. और आर्य समाज का आह्वान किया कि वे 'गंगा सफाई अभियान' में अपना पूर्ण सहयोग देकर इसकी सफलता में योगदान दें।

इससे पूर्व श्री नरेन्द्र मोदी का स्वागत करते हुए डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान डॉ. पूनम सूरी ने श्री मोदी को गुजरात की धरती से उभरे चार महान् देशभक्तों में से एक बताते हुए कहा कि उनके इस पद पर पहुंचने से हर भारतीय के दिल में एक नई उम्मीद जाग उठी है। डॉ. सूरी ने श्री नरेन्द्र मोदी का धन्यवाद करते हुए कहा कि उनके आगमन से :र आर्य के दिल में, हर डी.ए.वी.के कार्यकर्त्ता के मन में एक अतुलनीय उत्साह उत्पन्न हुआ है जिससे वह पूरे जोर–शोर से काम करते हुए भारत की सेवा में लगा रहेगा। उन्होंन श्री मोदी से यह प्रार्थना भी की कि अगर वह ठीक समझें और ये सम्भव हो सके तो संसद के प्रांगण में किसी भी जगह स्वामी दयानन्द सरस्वती का चित्रा अथवा प्रतिमा लगाई जाए तो उस महान् देशभक्त के लिए एक सच्ची श्रद्धांजलि होगी जिससे भारत और विदेश में रह रहे आर्यों का दिल प्रसन्नता से भर जाएगा।

मान्य प्रधानजी ने डी.ए.वी. का परिचय देते हुए इसके इतिहास, इसके वर्तमान स्वरूप और इसके अधीन चलाए गए देश–व्यापी सामाजिक कार्यक्रमों का ब्योरा रखते हुए यह बताया कि डी.ए.वी. ने श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा चलाए गए 'स्वच्छ भारत अभियान' को लेकर महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। 130 वर्षों के अपने इतिहास और संस्था के उद्देश्यों की ओर संकेत करते हुए डॉ. सूरी ने बताया कि डी.ए.वी. राष्ट्रीयता के साथ–साथ नैतिकता को अत्यंत आवश्यक मानकर अपने अध्यापक और बच्चों के लिए 'चरित्र निर्माण शिविरों' और 'नैतिक शिक्षा–प्रशिक्षण शिविरों' का आयोजन कर रहा है जिससे समाज में मानवता का प्रचार–प्रसार किया जा सके। उन्होंने यह भी कहा कि डी.ए.वी. का हर बच्चा 'मेड इन इंडिया' नहीं 'मेड फॉर इंडिया' होगा।

हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत ने इस अवसर पर बोलते हुए आर्य समाज द्वारा देश की आज़ादी के लिए दिये गये बलिदानों की चर्चा की और ;षि दयानन्द द्वारा सिखाए मनुष्य–मनुष्य के भेद को मिटाने की याद दिलाई। उन्होंने श्री नरेन्द्र मोदी के कार्यक्रमों में पूरे उत्साह के साथ भाग लेने के लिए जनसमूहों को प्रेरित किया।

इस अवसर पर डी.ए.वी. के छात्रा–छात्राओं द्वारा अत्यंत भावपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये जिसमें योग क्रियाओं का प्रदर्शन, शतरंज का खेल तथा पूरे देश की सांस्कृतिक विरासत से भरे–पूरे नृत्य लोगों के आकर्षण का केन्द्र बने।

देश–भर से आए 40 आर्य विद्वानों और संन्यासियों को इस अवसर पर विशेष प्रशस्ति–पत्रा और शॉल देकर सम्मानित किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**